संस्कृत साहित्य परिचय

(संशोधित संस्करण)

कक्षा 12 के लिए संस्कृत की पाठ्यपुस्तक

लेखक

कमलाकान्त मिश्र

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण ISBN 81-7450-203-3

फरवरी 1985

फाल्गुन 1906

संशोधित संस्करण।

मई 2003

ज्येष्ठ 1925

PD 5T ML

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्लू.सी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	निकट : धनकल बस स्टॉप,
नई दिल्ली 110 016	बैंगलूर 560 085	अहमदाबाद 380 014	पनिहटी, कोलकाता 700 114

प्रकाशन सहयोग

संपादन : एम. लाल

उत्पादन : अतुल सक्सेना

आवरण : बाल कृष्ण

रु. 35.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा सुदर्शन प्रिंटर्स, 487 पीरागढ़ी, नई दिल्ली 110 087 द्वारा मुद्रित।

पुरोवाक्

हमारी भारतीय शिक्षा-व्यवस्था में संस्कृत के महत्त्व को ध्यान में रखकर विद्यालयों में संस्कृत के पठन-पाठन के लिए प्रारंभिक स्तर से उच्चतर माध्यमिक स्तर तक आदर्श पाठ्यक्रम और आदर्श पाठ्यपुस्तकों का निर्माण-कार्य राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग के तत्त्वावधान में निरंतर प्रगतिशील है। इसी क्रम में सन् 1985 में परिषद् द्वारा 10+2 की शिक्षा पद्धति के अनुरूप उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के छात्रों के लिए *"संस्कृत भाषा एवं साहित्य का इतिहास"* जैसे विस्तृत विषय को छात्रोपयुक्त सुगम शैली में प्रस्तुत करने के लिए *'संस्कृत साहित्य परिचय'* नामक पुस्तक प्रकाशित की गयी थी जो छात्रों के लिए अत्यंत उपादेय रही है।

परिषद् द्वारा सन् 2000 में प्रकाशित "विद्यालयीय शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा" के अनुसार विकसित संस्कृत के नवीन पाठ्यक्रम एवं विगत वर्षों में प्राप्त अनुभव तथा पाठ्यपुस्तक-समीक्षा-गोष्ठी में विशेषज्ञों से प्राप्त सत्परामर्शों के आलोक में प्रस्तुत पुस्तक *'संस्कृत साहित्य परिचय'* का यह संशोधित संस्करण तैयार किया गया है जो कक्षा 12 (ऐच्छिक संस्कृत) के लिए निर्धारित संस्कृत साहित्य के अंशों के अध्ययन-अध्यापन की अपेक्षाओं को पूरा करता है। अपेक्षित परिवर्तनों के अतिरिक्त इसमें 'आधुनिक संस्कृत साहित्य धारा' नामक अध्याय का समावेश किया गया है जिससे संस्कृत भाषा की संजीवनी शक्ति परिलक्षित हो

सके। आशा है, यह संस्करण न केवल उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के छात्रों के लिए अपितु संस्कृत के सामान्य जिज्ञासुओं के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा। इस पुस्तक के लेखक एवं संशोधित संस्करण की पाण्डुलिपि के समीक्षार्थ आयोजित कार्यगोष्ठी में उपस्थित होकर जिन विषय-विशेषज्ञों एवं अनुभवी अध्यापकों ने अपने बहुमूल्य सुझावों से सहयोग देकर पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने में योगदान किया है, परिषद् उन सभी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती है।

पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तक का विकास एक निरंतर गतिशील प्रक्रिया है। अतः पुस्तक को और अधिक छात्रोपयोगी बनाने के लिए विशेषज्ञों एवं अनुभवी अध्यापकों द्वारा प्रेषित परामर्शों का सदैव स्वागत होगा।

जगमोहन सिंह राजपूत

नई दिल्ली — *निदेशक*

दिसंबर, 2002 — राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

भूमिका

संस्कृत विश्व की एक प्राचीन भाषा होने के कारण बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसका साहित्य ऋग्वेद-काल से लेकर आज तक अबाध गति से प्रवाहित होता रहा है। ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में जितने ग्रंथ इस भाषा में लिखे गए हैं उतने अन्य किसी भी प्राचीन भाषा में प्राप्त नहीं होते। प्राचीन भारतीयों ने इस भाषा के प्रति इतना आदरभाव व्यक्त किया कि उन्होंने इसे देवताओं की भाषा कहा। जिन लोगों ने अपनी रचनाएँ पालि, प्राकृत आदि दूसरी भाषाओं में की थीं, वे भी संस्कृत भाषा का स्थायित्व देखकर बाद में संस्कृत में ही लिखने लगे। अतएव जैन और बौद्ध धर्म का परवर्ती साहित्य संस्कृत भाषा में लिखा गया।

संस्कृत वाङ्मय की विशालता का अनुमान कोई साधारण व्यक्ति नहीं लगा सकता। इस भाषा में प्रत्येक विषय से संबद्ध ग्रंथों की संख्या इतनी अधिक है कि उनका सम्यक् ज्ञान करना आजीवन अध्ययन करने वाले व्यक्ति के लिए कठिन है। प्रत्येक भारतीय को संस्कृत भाषा में लिखे गए साहित्य पर गर्व होना चाहिए। संस्कृत भाषा ने भारत की आधुनिक भाषाओं को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बहुत प्रभावित किया है। मध्यकाल के प्राकृत साहित्य अपभ्रंश-साहित्य को तो संस्कृत की सहायता के बिना समझना ही कठिन है। आधुनिक विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य का अधिकांश भाग संस्कृत साहित्य की देन है। भारतीय भाषाओं ने संस्कृत से बहुत से शब्दों को लिया है। इन शब्दों की व्युत्पत्ति जानने के लिए संस्कृत भाषा का अनुशीलन अपेक्षित है।

संस्कृत का महत्त्व भारत में ही नहीं, अपितु विदेशों में भी स्वीकार किया गया है। जिस व्यक्ति को भारतीय ज्ञान-विज्ञान में तनिक भी रुचि है वह संस्कृत की उपेक्षा नहीं कर सकता। विदेशों में विभिन्न विश्वविद्यालय संस्कृत भाषा तथा इतिहास के विषय में वर्षों से अनुसंधान में लगे हुए हैं। भारत पर प्रायः 200 वर्षों तक शासन करने वाले ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों में शायद ही कोई ऐसा होगा जहाँ संस्कृत भाषा का अनुशीलन न होता हो। वहाँ किए गए संस्कृत वाङ्मय संबंधी कार्य आज भी अनुसंधान के क्षेत्र में मानदण्ड माने जाते हैं। मैक्समूलर, मैक्डोनल, कीथ इत्यादि विद्वानों ने ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों में रहकर संस्कृत साहित्य के विविध क्षेत्रों में अनुसंधान कार्य किया था। इस दृष्टि से जर्मनी का भी योगदान महत्त्वपूर्ण है। वहाँ विगत 150 वर्षों में संस्कृत भाषा और साहित्य से संबद्ध बहुत उपयोगी कार्य हुए हैं। संस्कृत भाषा की तुलना अन्य यूरोपीय भाषाओं से करके उन सभी भाषाओं को एक ही भारत-यूरोपीय परिवार का सिद्ध करना इस अध्ययन का सबसे बड़ा परिणाम है। यूरोपीय विश्वविद्यालयों में संस्कृत का अध्ययन भारत-यूरोपीय परिवार की प्राचीनतम भाषा के रूप में किया जाता है।

संस्कृत के अन्य अनेक देशों में संस्कृत भाषा और साहित्य का अनुशीलन किया जाता है। अमेरिका के कई विश्वविद्यालय भारतीय दर्शन, संस्कृत व्याकरण, साहित्य आदि विषयों के अनुशीलन तथा अनुसंधान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। इसी प्रकार जापान, थाइलैण्ड, श्रीलंका इत्यादि एशियाई देशों में भी भारतवर्ष के साथ प्राचीन सांस्कृतिक संबंध होने के कारण संस्कृत का महत्त्व समझा जाता है और इस दिशा में अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था की जाती है। इन सभी देशों में भारतीय विद्वानों को आमंत्रित करके उनका सम्मान आज भी किया जाता है। विदेशों

में कई संस्कृत ग्रंथों के प्रामाणिक संस्करण तथा उनके अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। इससे स्पष्ट है कि संस्कृत का महत्त्व भारत से बाहर भी कम नहीं है।

संस्कृत भाषा और साहित्य का राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से भी बहुत महत्त्व है। संस्कृत साहित्य की मूल चेतना भारतवर्ष को एक राष्ट्र के रूप में देखने की है। भारतवर्ष में क्षेत्रीय विषमताओं के होने पर भी जिन तत्त्वों ने इस देश को एक सूत्र में बाँध रखा है उनमें संस्कृत भाषा तथा इसका साहित्य प्रमुख है। पुराणों ने भारत के भूगोल को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि प्रत्येक नागरिक के मन में संपूर्ण देश के प्रति आस्था उत्पन्न हो जाती है। वह अपनी क्षेत्रीय भावना को राष्ट्र के प्रति प्रेम के बृहत्तर आदर्श में विस्तृत कर देता है। संस्कृत साहित्य ने उत्तर-दक्षिण या पूर्व-पश्चिम का भेदभाव मिटाकर प्रत्येक नागरिक को भारतीय होने का स्वाभिमान प्रदान किया है। यही नहीं, **कृण्वन्तो विश्वमार्यम्** (समस्त जगत् को हम आर्य बनाएँ) **वसुधैव कुटुम्बकम्** (सारी पृथ्वी ही हमारा परिवार है) इत्यादि सुंदर उक्तियों में मानव मात्र के प्रति आत्मीयता के भाव व्यक्त किए गए हैं।

इसी उद्देश्य से संस्कृत के अध्ययन के महत्त्व का अनुभव सभी लोग करते हैं। संस्कृत के अध्ययन से ही हम अपने देश की प्राचीन संस्कृति को समझ सकते हैं। पूर्वजों ने हमें संस्कृत वाङ्मय के रूप में ऐसी संपत्ति दी है जिसका लाभ अनंत काल तक मिलता रहेगा। वैदिक वाङ्मय, काव्य, दर्शन, धर्मशास्त्र, राजनीति, ज्योतिष, आयुर्वेद तथा अन्य क्षेत्रों में प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान को समझने एवं संस्कृत भाषा की अभिव्यक्ति की सुंदरता का आनंद उठाने के लिए हमें इसका अध्ययन करना ही होगा।

संस्कृत भाषा और साहित्य के अध्ययन की दिशा में संस्कृत साहित्य के इतिहास का अत्यधिक महत्त्व है। हम कितने भी साधन-संपन्न हों, किंतु इस भाषा के विशाल वाङ्मय के प्रधान ग्रंथरत्नों का भी साक्षात् अनुशीलन करने में समर्थ नहीं हो सकते। साहित्य के इतिहास के अनुशीलन से ही हम प्रमुख ग्रंथों का परिचय पा सकते हैं। उन ग्रंथों के महत्त्व से अवगत होने पर भी उनके प्रति आस्था में दृढ़ता आएगी। प्रत्येक भाषा के साहित्य-ग्रंथों का परिचय पाने के लिए साहित्य के इतिहास की आवश्यकता होती है। यही बात संस्कृत साहित्य के साथ भी है।

प्रस्तुत पुस्तक

पिछले 30 वर्षों में विभिन्न भाषाओं में संस्कृत साहित्य के इतिहास लिखे गए हैं। कुछ इतिहास केवल वैदिक साहित्य का विवेचन करते हैं तो कुछ केवल लौकिक संस्कृत साहित्य का। कुछ ग्रंथों में केवल शास्त्रीय साहित्य का परिचय दिया गया है। इन इतिहास ग्रंथों में वेबर, मैक्समूलर, मैक्डोनल, विण्टरनिट्ज, ए.बी. कीथ इत्यादि पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा लिखे गए ग्रंथों के अतिरिक्त कृष्णमाचार्य, पं. बलदेव उपाध्याय, कृष्णचैतन्य, वाचस्पति गैरोला, उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' इत्यादि भारतीय विद्वानों द्वारा लिखे गए ग्रंथ भी हैं। इन सभी ग्रंथों का कलेवर इतना विशाल है कि विद्यालय के छात्रों को उनसे घबराहट होती है। आज भी साधारण छात्रों के लिए संस्कृत साहित्य के संक्षिप्त इतिहास की आवश्यकता बनी हुई है। इसी उद्देश्य से राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली की ओर से स्वर्गीय प्रो.टी.जी. माईणकर द्वारा रचित 'संस्कृत भाषा और साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' नामक पुस्तक 1978 ई. में प्रकाशित हुई थी। विगत वर्षों के अनुभव एवं विशेषज्ञों से प्राप्त परामर्शों के आलोक में यह निश्चय

किया गया कि छात्रों की वर्तमान अपेक्षा को ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक के स्थान पर एक नई पुस्तक लिखी जाए जो उनके स्तर के अधिक अनुरूप हो तथा उन्हें सरल भाषा में संस्कृत साहित्य के प्रमुख ग्रंथों का परिचय दे सके। विवादास्पद विषयों में प्रारंभिक छात्रों को न उलझाकर उन्हें सीधे विषय में प्रवेश मिले, इसी उद्देश्य से इस पुस्तक की रचना की गई है। इस पुस्तक की कतिपय विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

1. पुस्तक में विषय का चयन मुख्यतः उच्चतर माध्यमिक कक्षा के संस्कृत पाठ्यक्रम तथा इस स्तर के छात्रों की अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर किया गया है। फलतः संस्कृत वाङ्मय के उन पक्षों के अनावश्यक विस्तार से यथासंभव बचने का प्रयास हुआ है जिनकी आवश्यकता इस स्तर के छात्रों को नहीं होती है।
2. काल-निर्धारण-संबंधी जटिल समस्याओं के विवादों से बचते हुए यथासंभव निर्विवाद तथ्यों को समाविष्ट किया गया है।
3. विषयवस्तु के प्रतिपादन में विषय का महत्त्व, राष्ट्रीय मूल्य तथा उसके परवर्ती प्रभाव का यथास्थान उल्लेख किया गया है।
4. वैदिक साहित्य का परिचय प्रस्तुत करते हुए इस साहित्य की गरिमा एवं उसके सांस्कृतिक महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है।
5. यथास्थान उपयुक्त मूल उद्धरणों का सानुवाद समावेश किया गया है।
6. विभिन्न विधाओं के वर्णन में आधुनिक विशिष्ट रचनाओं को यथास्थान समाविष्ट किया गया है जिसका इस विषय के अन्य ग्रंथों में प्रायः अभाव पाया जाता है।
7. पाठों की विषयवस्तु छात्रों को सरलता से हृदयंगम हो सके इस उद्देश्य से अध्यायों के अंत में सारांश तथा पर्याप्त अभ्यास-प्रश्न दिए गए हैं, जो इस पुस्तक की अपनी मौलिक विशेषता है।
8. अभ्यास-प्रश्नों के निर्माण में यह ध्यान रखा गया है कि पाठ के कोई भी महत्त्वपूर्ण तथ्य छूटें नहीं। अधिकांश प्रश्न वस्तुनिष्ठ हैं।
9. तथ्यों की प्रामाणिकता पर पूर्ण ध्यान दिया गया है। पुस्तक-निर्माण से पूर्व इसकी रूपरेखा विविध स्तरों के विशेषज्ञों एवं विद्वानों से मण्डित राष्ट्रीय संस्कृत कार्यगोष्ठी में निश्चित की गई है तथा पाण्डुलिपि-निर्माण

के अनंतर भी प्रामाणिक विशेषज्ञों एवं अनुभवी अध्यापकों की गोष्ठी में पर्याप्त समीक्षा की गई एवं अपेक्षित संशोधन किए गए हैं।

10. पुस्तक को अधिक-से-अधिक उपयोगी बनाने के उद्देश्य से इसमें परिशिष्ट के रूप में लेखकानुक्रमणिका, ग्रंथानुक्रमणिका, ग्रंथ एवं ग्रंथकारों की कालक्रमसारणी तथा विशेष अध्ययन के लिए अनुशंसित पुस्तकों की सूची को समाविष्ट किया गया है। ये परिशिष्ट न केवल छात्रों के लिए, अपितु शिक्षकों एवं सामान्य संस्कृत जिज्ञासुओं के लिए भी विशेष महत्त्व के हैं।

संशोधित संस्करण

प्रस्तुत संस्करण पूर्व प्रकाशित 'संस्कृत साहित्य परिचय' पुस्तक का संशोधित रूप है। इस पुस्तक में 12 अध्याय हैं जिनमें क्रमशः संस्कृत भाषा, वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत एवं पुराण, महाकाव्य, ऐतिहासिक महाकाव्य, काव्य की अन्य विधाएँ, गद्यकाव्य, नीतिकथा और लोककथा, चम्पूकाव्य, नाट्य साहित्य, आधुनिक संस्कृत साहित्य धारा तथा शास्त्रीय साहित्य का विवेचन हुआ है। प्रत्येक अध्याय या विषय की समाप्ति पर अभ्यास के लिए विषयनिष्ठ और वस्तुपरक दोनों प्रकार के प्रश्न दिए गए हैं जो विषय को समझने तथा स्मरण रखने में सहायक होंगे। वस्तुपरक प्रश्न संदेह की स्थिति उत्पन्न करके बुद्धि को शीघ्र निर्णय करने की क्षमता प्रदान करते हैं। ऐसे प्रश्नों की अधिकाधिक विधाओं का निवेश पूरी पुस्तक में हुआ है। विषयवस्तु का प्रतिपादन सरलरूप में करने का प्रयास किया गया है। वस्तुपरक विषयों का निर्देश मानक ग्रंथों से सत्यापन करने के बाद ही किया जाता है। आधुनिक संस्कृत साहित्य धारा पर अलग से दृष्टिपात कर संस्कृत साहित्य की जीवंत स्थिति को स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार यह पुस्तक न केवल बारहवीं कक्षा के लिए ही वरदान सिद्ध होगी अपितु विश्वविद्यालयीय अध्येताओं के लिए भी उपयोगी होगी।

संशोधित संस्करण की विशेषताएँ

- प्रस्तुत संस्करण में परिषद् द्वारा सन 2002 में विकसित संस्कृत के नवीन पाठ्यक्रम कक्षा 11-12 में निर्धारित पाठ्यांशों का समुचित समावेश किया गया है।
- पाठ्यक्रम में किए गए परिवर्तन के अनुसार पाठ्यपुस्तक में यथास्थान संशोधन किए गए हैं।
- पूर्ववर्ती पुस्तक में संस्कृत साहित्य की विषयवस्तु से संबद्ध कुछ चुने हुए विषयों को इस पुस्तक में समाविष्ट कर लिया गया है।
- 'आधुनिक संस्कृत साहित्य धारा' नामक एक नए अध्याय को बढ़ाया गया है जिसमें संस्कृत साहित्य की विविध विधाओं से संबद्ध आधुनिक लेखकों की रचनाओं का समावेश किया गया है जो संस्कृत भाषा की जीवंतता तथा प्रासंगिकता का प्रमाण है।
- श्लेषकाव्य तथा संस्कृत कवयित्रियों का विवरण भी इस संस्करण में यथास्थान दिया गया है।

आशा है, सुकुमारमति विद्यालयीय छात्रों को विशाल संस्कृत साहित्य की समृद्धि से परिचित कराने तथा उनमें संस्कृत साहित्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने में यह संशोधित संस्करण उपयोगी सिद्ध होगा। इस पुस्तक के निर्माण में जिन ग्रंथों, ग्रंथकारों एवं विद्वानों से सहायता मिली है, लेखक उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ है।

गांधी जी का जंतर

तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आज़माओ :

जो सबसे गरीब और कमज़ोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुँचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा, जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

मो॰ क॰ गांधी

पाण्डुलिपि समीक्षा कार्यगोष्ठी के सदस्य

विद्यानिवास मिश्र
पूर्वकुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

राजेन्द्र मिश्र
कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

उमाशंकर शर्मा "ऋषि"
पूर्व प्रोफेसर एवं *अध्यक्ष*
संस्कृत विभाग,
पटना विश्वविद्यालय

वाई. डी. शर्मा
पूर्व प्रोफेसर एवं *अध्यक्ष*
संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

शिवजी उपाध्याय
प्रतिकुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

वाचस्पति द्विवेदी
पूर्व-अध्यक्ष
शिक्षाशास्त्र विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

किरण पाठक
निदेशक
हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषा विभाग
रा.शै.अ. और प्र.प., उत्तर प्रदेश,
(राज्य हिन्दी संस्थान)
वाराणसी

शीतलाप्रसाद उपाध्याय
वरिष्ठ व्याख्याता
सांख्य–योग विभाग, सम्पूर्णानन्द
संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

रामनाथ झा
सहायक आचार्य
संस्कृत अध्ययन केन्द्र,
जवाहरलाल नेहरू
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

रविदत्त पाण्डेय
पूर्व उपप्रधानाचार्य
राजकीय उ.मा. विद्यालय
मानसरोवर पार्क, शाहदरा, दिल्ली

परमानन्द झा
पी.जी.टी., संस्कृत
रा.व.मा. विद्यालय
आदर्शनगर, दिल्ली

रामप्रकाश शर्मा
टी.जी.टी., केंद्रीय विद्यालय
वायु सेना स्टेशन, बवाना, दिल्ली

एन.सी.ई.आर.टी. संकाय
सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग

उर्मिल खुंगर
सेलेक्शन ग्रेड लेक्चरर

कृष्णचन्द्र त्रिपाठी
रीडर

दया शंकर तिवारी
प्रोजेक्ट फेलो

कमलाकान्त मिश्र
प्रोफेसर **(संयोजक)**

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह -

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे; और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके।

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

संस्कृत भाषा

संसार की जितनी भाषाएँ हैं, उनमें संस्कृत बहुत प्राचीन है। इस भाषा में प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति का बहुत बड़ा भण्डार है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक इस भाषा में रचनाएँ होती रही हैं, साहित्य लिखा जाता रहा है। जिन दिनों लिखने के साधन विकसित नहीं थे, उन दिनों भी इस भाषा की रचनाएँ मौखिक परंपरा से चल रही थीं। उस परंपरा की रचनाएँ जो आज बची हैं, अक्षरशः सुरक्षित हैं। यही नहीं, इतने समय के बाद भी उनके उच्चारण की विधि पूर्ववत् है, उसमें कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ है।

भारतवर्ष की इस प्राचीन भाषा को लोगों ने श्रद्धावश देववाणी या सुरभारती कहा था जिसका अर्थ है कि यह देवताओं की भाषा है। इस भाषा में साहित्य की धारा कभी नहीं सूखी, यह बात इसकी अमरता प्रमाणित करती है। साहित्य के सभी क्षेत्रों में इस भाषा में ग्रन्थ मिलते हैं चाहे वे वैज्ञानिक हों या दार्शनिक। मानवजीवन के सभी पक्षों पर समान रूप से प्रकाश डालने वाली इस भाषा की रचनाएँ हमारे देश की प्राचीन दृष्टि की व्यापकता सिद्ध करती हैं। **वसुधैव कुटुम्बकम्** (सारी पृथ्वी ही हमारा परिवार है) का उद्घोष संस्कृत भाषा साहित्य की ही देन है।

संस्कृत भाषा पारिवारिक दृष्टि से भारत-यूरोपीय परिवार की भाषा है। ग्रीक, लैटिन, अंग्रेजी, रूसी, फ्रांसीसी, स्पेनी आदि यूरोपीय भाषाएँ इसी परिवार की भाषाएँ हैं। यही कारण है कि इन भाषाओं में संस्कृत शब्दों जैसी ही ध्वनि और अर्थ वाले अनेक शब्द मिलते हैं।[1] ईरानी भाषा तो संस्कृत से

---

1 तुलनीय – संस्कृत – अस्ति, लैटिन – एस्त, फारसी – अस्त। ये सभी समानार्थक हैं।

बहुत अधिक मिलती है। पिछले दो सौ वर्षों में यूरोपीय विद्वानों ने संस्कृत का पर्याप्त अध्ययन इन भाषाओं से तुलना के आधार पर किया है। इस दृष्टि से संस्कृत भाषा विदेशों में अत्यधिक आदर पा चुकी है। आज भी यूरोपीय भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन करने के लिए संस्कृत का अनुशीलन विदेशी शिक्षा-संस्थाओं में भी अनिवार्य रूप से किया जाता है।

हमारे देश की प्रायः सभी आधुनिक भाषाएँ संस्कृत से जुड़ी हैं। हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला, उड़िया, असमिया, पंजाबी, सिन्धी आदि भाषाएँ तो इससे विकसित ही हुई हैं। दक्षिण भारत की तमिल, तेलुगु, कन्नड़ तथा मलयालम में भी संस्कृत के बहुत से शब्द मिलते हैं जिन्हें उन भाषाओं ने अपने ढंग से अपनाया है। इसी प्रकार दक्षिण भारत की इन द्रविड़-भाषाओं से संस्कृत ने भी समय-समय पर अनेक शब्द लिए हैं तथा उन्हें अपने रूप में ढाल लिया है। यही क़ारण है कि भिन्न-भिन्न परिवारों की भाषा होने पर भी दोनों का परस्पर सामंजस्य है। संस्कृत भाषा ने राष्ट्र की एकता के लिए बहुत बड़ा कार्य किया है। संस्कृत की एक सुप्रसिद्ध उक्ति है :

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
तद्वर्षं भारतं प्राहुर्भारती यत्र सन्ततिः।।

जो देश (वर्ष) समुद्र (हिन्द महासागर) के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में अवस्थित है उसे पहले के लोगों ने *'भारत'* कहा है। वहाँ की प्रजा *'भारती'(भारतीय)* कहलाती है।

संस्कृत भाषा सहस्रों वर्षों से चली आ रही है। इस अवधि में इसका रूप परिवर्तित होता रहा है। आधुनिक भाषाओं तक इसके विकास की प्रक्रिया इस प्रकार रही है :

(क) **प्राचीन आर्यभाषा-काल** (2000 ई. पू. - 500 ई. पू.)– इस काल में वैदिक भाषा और प्राचीन संस्कृत भाषा के विकास की प्रक्रिया चलती रही।

(ख) **मध्यकालीन आर्यभाषा-काल** (500 ई. पू. - 1000 ई. पू.)– इस काल में पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ। शिक्षित समाज में संस्कृत का प्रयोग होता रहा तथा अधिकांश प्रामाणिक ग्रन्थ इसी समय में लिखे गए। इस काल में जन-सामान्य में संस्कृत भाषा

का प्रयोग नहीं रहा, किन्तु इसके प्रति सम्मान का भाव पूर्ववत् बना रहा।

(ग) **आधुनिक आर्यभाषा-काल** (1000 ई. पू. - अब तक)– इस काल में विभिन्न प्रदेशों में बोली जाने वाली अपभ्रंश-भाषाओं से आधुनिक आर्यभाषाओं का विकास हुआ। द्रविड़ परिवार की भाषाओं को छोड़कर हिन्दी, मराठी आदि उपर्युक्त सभी भाषाएँ इसके अंतर्गत हैं। इन सभी भाषाओं में पर्याप्त साहित्य रचा गया। इस काल में भी संस्कृत भाषा द्वितीय युग के समान शिक्षित जनसमुदाय में प्रचलित रही, इसमें रचनाएँ भी होती रहीं। प्रादेशिक भाषाओं में भी ग्रन्थ-लेखन का कार्य उन्हीं लोगों ने किया, जो संस्कृत के पण्डित थे क्योंकि संस्कृत भाषा के अभाव में शिक्षा की कल्पना ही नहीं हो सकती थी। इस काल में विदेशी शासन का आरम्भ हुआ, जिससे तुर्की, अरबी और फारसी भाषाएँ भारत में शासकों द्वारा लाई गईं। इनका प्रभाव आधुनिक आर्य भाषाओं के शब्दकोश पर पड़ा जिससे बहुत से नए शब्द इन भाषाओं से आर्य भाषाओं में आ गए। संस्कृत भाषा इस आदान-प्रदान से अधिक प्रभावित नहीं हुई।

संस्कृत का विकास

संस्कृत भाषा अपने विकास-क्रम में समस्त रूढ़ियों और सुरक्षा के साधनों के होने पर भी एकरूप नहीं रह सकी। विभिन्न युगों में विकसित संस्कृत साहित्य की परस्पर तुलना करने पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। प्राचीन आर्य-भाषा-काल में ही संस्कृत के अनेक रूप मिलते हैं। किन्तु इस काल के अन्त में जब व्याकरण-ग्रन्थों के द्वारा, विशेष रूप से पाणिनि (500 ई. पू.) के व्याकरण से, इसे परिनिष्ठित रूप मिला तब रूपों की अस्थिरता समाप्त हो गई और भाषा एक ही रूप में स्थिर हो गई। इस काल के बाद सभी संस्कृत-ग्रन्थ इसी नियत भाषा में लिखे गए। इसका परिणाम यह हुआ कि परिवर्तन की धारा पालि, प्राकृत आदि भाषाओं के रूप में चल पड़ी। संस्कृत का रूप तो आज तक पाणिनि के व्याकरण पर ही आश्रित है परन्तु इसमें अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों का आगमन होता रहा। पाणिनीय व्याकरण का अनुसरण करने वाले संस्कृत साहित्य को **लौकिक** साहित्य कहते हैं। वस्तुतः

इस शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य से भिन्न समस्त संस्कृत साहित्य के लिए किया जाता है। इस अर्थ में लौकिक संस्कृत साहित्य रामायण, महाभारत आदि को भी समाविष्ट कर लेता है भले ही इनमें पाणिनि के नियमों का सर्वत्र अनुसरण नहीं है।

इस प्रकार संस्कृत भाषा की क्रमशः दो धाराएँ हैं : 1. वैदिक भाषा की धारा तथा 2. लौकिक संस्कृत की धारा। वैदिक भाषा की धारा भी अनेक रूपों में है। प्राचीनतम वेद ऋग्वेद की भाषा अन्य वेदों की भाषा से पहले की है एवं इससे कुछ भिन्न है। ऋग्वेद की भाषा भी सर्वत्र एक समान नहीं है। दूसरे वेदों में जो भाषा का रूप प्राप्त होता है, उसमें सरलीकरण की उन्मुखता दिखाई देती है। शब्दरूपों और धातुरूपों की अनियमितता तथा अनेकता क्रमशः दूर होती जाती है। दूसरे वेदों में हमें गद्य भी मिलता है, जबकि पूरी ऋग्वेद-संहिता पद्यात्मक है। संहिताओं के बाद उनकी व्याख्याओं के रूप में ब्राह्मण-ग्रन्थ, आरण्यक तथा उपनिषद् प्राप्त होते हैं। यद्यपि इन सब में न्यूनाधिक रूप से वैदिक भाषा ही प्रयुक्त है, किन्तु जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं वह भाषा लौकिक भाषा की ओर अभिमुख दिखाई पड़ती है। इसमें वाक्यरचना बहुत सरल है, किन्तु पद-रूपों की जटिलता अवश्य है।

वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के सन्धिकाल में हमें रामायण तथा महाभारत जैसे ग्रन्थ मिलते हैं। इन ग्रन्थों की भाषा में वैदिक वाक्यों की सरलता के साथ-साथ जटिल शब्दरूपों का अभाव है। इन ग्रन्थों की भाषा ने लौकिक संस्कृत साहित्य को विकास का मार्ग दिखाया। इसी काल में संस्कृत व्याकरण के सुप्रसिद्ध लेखक पाणिनि का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने अपने समय में प्रचलित संस्कृत भाषा का व्यापक निरीक्षण करके **अष्टाध्यायी** नामक ग्रन्थ में भाषा-सम्बन्धी नियम बनाए। उन्होंने तुलना के लिए वैदिक भाषा के विषय में भी अपने निरीक्षण को सूत्र-रूप में उपस्थित किया। पाणिनि ने वेदों की भाषा को **छान्दस** माना है, किन्तु सामान्य संस्कृत को केवल **भाषा** कहा है। पाणिनि के बाद विकसित संस्कृत साहित्य उसी परिनिष्ठित भाषा का उपयोग करने लगा। कवियों और लेखकों की शैली में जो भी अन्तर रहा हो, भाषा वही रही। दूसरे वैयाकरणों ने भी पाणिनि के द्वारा निरीक्षित भाषा को ही परिनिष्ठित या मानक मानकर अपने-अपने व्याकरण लिखे।

वैदिक और लौकिक संस्कृत में भेद

संस्कृत भाषा के वैदिक रूप में सभी वेदों की संहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्-ग्रन्थ लिखे गए हैं। इसके लौकिक रूप में वेदों का उपयोग बतलाने वाले वेदाङ्ग-ग्रन्थ, रामायण, महाभारत, नाटक, काव्य, कथा-साहित्य, आयुर्वेद आदि से संबद्ध ग्रन्थों की रचना विभिन्न युगों में हुई। वैदिक संस्कृत में मुख्यतः धर्मप्रधान साहित्य की रचना हुई, जिसका उपयोग यज्ञ आदि में होता था। लौकिक संस्कृत में जीवन के अन्य अनेक पक्ष भी मिलते हैं। वैदिक संस्कृत का आरम्भ तो पद्य से ही हुआ, किन्तु धीरे-धीरे गद्य का भी साम्राज्य छा गया। लौकिक संस्कृत में पुनः पद्य की प्रतिष्ठा हुई और गद्यरचना का क्षेत्र सीमित हो गया। गद्य लिखना कठिन माना जाने लगा। वैदिक भाषा के छन्दों से लौकिक संस्कृत के छन्दों में भी भिन्नता आई। इस प्रकार संस्कृत के छन्दों में अधिक विविधता आ गई।

भाषा की दृष्टि से वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत से बहुत भिन्न है, किन्तु यह भिन्नता ऐसी नहीं जैसी संस्कृत और प्राकृत में हैं। संस्कृत और प्राकृत में ध्वनिगत अन्तर का प्राचुर्य है, जबकि वैदिक और लौकिक संस्कृत में ध्वनिगत अन्तर शून्यप्राय है, विशेष रूप में शब्दगत भेद ही अधिक है। दोनों एक ही भाषा की दो शैलियाँ हैं। वैदिक भाषा के शब्द-रूप संख्या में अधिक थे, वे संस्कृत भाषा में कम हो गए जैसे– संस्कृत शब्द रूप **गन्तुम्** (जाने के लिए) है। वैदिक भाषा में इसके अतिरिक्त इसी अर्थ में **गन्तवे गमध्यै गन्तोः** इत्यादि कई रूपों के प्रयोग थे। अकारान्त शब्दों के प्रथमा-बहुवचन में प्रियाः, प्रियासः जैसे दो रूप वैदिक संस्कृत में थे, तृतीया बहुवचन में भी प्रियैः, प्रियेभिः जैसे रूप यहाँ थे। लौकिक संस्कृत ने इन्हें कम कर दिया, पहले रूपों को ही अपनाया और दूसरे रूपों को छोड़ दिया। इस प्रकार दोनों भाषाओं में मुख्य अन्तर वैदिक भाषा की अनेकरूपता एवं लौकिक संस्कृत भाषा की एकरूपता है।

आधुनिक आर्यभाषाओं से संस्कृत का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जैसा कि ऊपर कहा गया है संस्कृत भाषा का विकास जब रुक गया, तब इसी से प्राकृत भाषाओं का विकास हुआ। ये भाषाएँ जनसामान्य में प्रचलित हुईं। संस्कृत नाटकों में भी इनका प्रयोग कुछ पात्रों के संवाद के रूप में होने लगा। इसमें स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे गए जिनमें काव्यों की संख्या अधिक थी। उधर

आरम्भिक बौद्ध साहित्य पालि भाषा में लिखा गया। जैन धर्म के ग्रन्थ अर्धमागधी (प्राकृत का एक भेद) में लिखे गए। प्रथम शताब्दी ई. के बाद से इन दोनों धर्मों के ग्रन्थ संस्कृत में भी लिखे जाने लगे। प्राकृत का विकास उत्तरी और मध्य भारत के विविध क्षेत्रों में विभिन्न रूपों में हुआ। इसलिए प्राकृत के भेद हुए– महाराष्ट्री (महाराष्ट्र में), शौरसेनी (पश्चिमी उत्तर प्रदेश में), मागधी (पूर्वी भारत में), अर्धमागधी (पूर्वी उत्तर प्रदेश में) तथा पैशाची (सिन्ध और पश्चिमोत्तर भारत में)। ये मुख्य भेद हैं जबकि उपभेदों की संख्या अधिक है।

इन प्राकृतों से उन्हीं नामों की अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ। ये भी विभिन्न क्षेत्रों से सम्बद्ध हुईं। इस काल में संस्कृत शब्द-रूपों की विभक्तियों को मूल शब्द से पृथक् किया गया तथा नए-नए विभक्ति-चिह्नों का विकास हुआ। क्षेत्रीय अपभ्रंश-भाषाओं ने पृथक्-पृथक् आधुनिक आर्य भाषाओं को जन्म दिया। महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी, शौरसेनी से हिन्दी, खस अपभ्रंश से पहाड़ी, ब्राचड़ से गुजराती और सिन्धी, मागधी से बिहार की भोजपुरी, मैथिली और मगही के अतिरिक्त बंगला, उड़िया और असमिया और अर्धमागधी से पूर्वी उत्तर प्रदेश की बोलियाँ निकलीं। इस प्रकार आधुनिक आर्यभाषाएँ संस्कृत से क्रमशः विकसित हैं। संस्कृत का व्यापक प्रभाव इन सब पर है।

सारांश

संस्कृत भाषा संसार की अत्यन्त प्राचीन भाषा है। इसमें भारतीय सभ्यता और संस्कृति से सम्बद्ध रचनाओं का बहुत बड़ा भण्डार है। इस भाषा में प्राचीन समय से आज तक रचनाएँ होती आ रही हैं। यह भाषा भारोपीय (इंडो-यूरोपियन) परिवार की भाषा है।

प्रायः 2000 ईसा पूर्व में वैदिक और प्राचीन संस्कृत भाषा का विकास माना जाता है। 500 ईसा पूर्व में पाणिनि ने इसे परिनिष्ठित रूप दिया। इस काल के बाद सभी संस्कृत ग्रन्थ इसी भाषा में लिखे गए। इस प्रकार संस्कृत के वैदिक और लौकिक दो रूप सामने आते हैं। आधुनिक आर्य भाषाओं का संस्कृत से घनिष्ठ सम्बन्ध है। पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं का विकास भी वैदिक तथा लौकिक संस्कृत से ही हुआ है। क्षेत्रीय अपभ्रंश भाषाओं से विभिन्न आधुनिक आर्यभाषाओं का विकास हुआ है। इस प्रकार संस्कृत समस्त आर्य भाषाओं की जननी है।

अभ्यास-प्रश्न

1. संस्कृत भाषा के महत्त्व को पाँच वाक्यों में लिखिए।
2. भारोपीय भाषा परिवार में कौन-कौन सी मुख्य भाषाएँ हैं?
3. संस्कृत से विकसित होने वाली भारतीय भाषाओं के नाम लिखिए।
4. द्रविड़ परिवार की कौन-सी भाषाएँ संस्कृत से प्रभावित हैं?
5. वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में क्या अन्तर है? उदाहरण देकर बताइए।
6. अष्टाध्यायी की रचना किसने की?
7. प्राकृत के कौन-कौन से मुख्य भेद हैं?
8. रिक्त स्थान भरिए–
   (क) .... नामक ग्रन्थ में भाषा-सम्बन्धी नियम बताए गए हैं।
   (ख) .... भाषा से हिन्दी का विकास हुआ है।
   (ग) संस्कृत नाटकों में .... भाषा का भी प्रयोग होता था।
   (घ) आरम्भिक बौद्ध साहित्य .... भाषा में लिखा गया।
   (ङ) वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के सन्धि-काल में हमें .... और .... जैसे ग्रन्थ मिलते हैं।
9. "क" स्तम्भ में दिए गए परिवारों से "ख" स्तम्भ में दी गई भाषाओं को मिलाइए।

स्तम्भ क	*स्तम्भ ख*
भारत-यूरोपीय परिवार	मराठी, ग्रीक, लैटिन, तेलगु, कन्नड़
द्रविड़ परिवार	संस्कृत, उड़िया, हिन्दी, मलयालम
	अंग्रेजी, पंजाबी, रूसी, तमिल।

द्वितीय अध्याय

वैदिक साहित्य

वैदिक साहित्य के अन्तर्गत वैदिक भाषा में रचित ग्रन्थों को रखा जाता है। पिछले अध्याय में कहा गया है कि यह भाषा लौकिक संस्कृत के अभ्युदय से पहले की है। इस भाषा में लिखे गए ग्रन्थ यद्यपि मुख्यतः धार्मिक विषयवस्तु से सम्बद्ध हैं, तथापि कुछ लौकिक विषय भी इस साहित्य में यथास्थान मिलते हैं, जिनसे तात्कालिक जीवन और विचार में विविधता का परिचय मिलता है। सामान्यतः वैदिक साहित्य के विकास का समय 2000 ई. पू. से 800 ई. पू. तक माना जाता है। इस कालावधि में चार चरणों में साहित्य का विकास देखा जाता है।

1. **संहिता** : संहिताओं में वैदिक मन्त्रों का संग्रह है। इनके चार मुख्य रूप हैं : **ऋग्वेदसंहिता**, **यजुर्वेदसंहिता**, **सामवेदसंहिता** तथा **अथर्ववेदसंहिता**। इनका विभाजन वैदिक यज्ञों में काम करने वाले चार ऋत्विजों (यज्ञ कराने वालों) के कार्यों को ध्यान में रखकर किया गया था। यज्ञों में ये चार ऋत्विज् होते थे– **होता**, **अध्वर्यु**, **उद्गाता** तथा **ब्रह्मा**। **होता** देवताओं को यज्ञ में बुलाता है और ऋचाओं का पाठ करते हुए यज्ञ-देवों की स्तुति करता है। होता के प्रयोग के लिए उपयोगी मन्त्रों का संग्रह **ऋग्वेदसंहिता** में है। **अध्वर्यु** का काम यज्ञ का विधिपूर्वक सम्पादन है। इसके लिए आवश्यक मन्त्र **यजुर्वेदसंहिता** में संकलित हैं। **उद्गाता** का काम यज्ञ में ऋचाओं का सस्वर गान करना है। यह मधुर स्वर में देवताओं को प्रसन्न करता है। उसके लिए उपयोगी मन्त्र प्रायः **ऋग्वेदसंहिता** से लेकर **सामवेदसंहिता** में संकलित किए गए हैं। **ब्रह्मा** नामक ऋत्विज् यज्ञ का पूरा निरीक्षण करता है, जिससे

कोई त्रुटि न हो। यद्यपि वह सभी वेदों का ज्ञाता होता है, किन्तु उसका अपना विशिष्ट वेद अथर्ववेद-संहिता है। इन संहिताओं का अध्ययन विभिन्न परिवारों में पृथक्-पृथक् रूप से होता था, फलतः कालान्तर में इनकी अनेक शाखाएँ हो गईं। आज कुछ ही शाखाएँ उपलब्ध हैं।

2. **ब्राह्मण** : संहिताओं में जिन मन्त्रों का संकलन है, उनकी व्याख्या ब्राह्मण-ग्रन्थों में की गई है। ब्राह्मण-ग्रन्थों का मुख्य उद्देश्य यज्ञों की व्याख्या करना था। इस प्रसंग में बहुत-सी नैतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक बातें भी आई हैं। वैदिक धर्म का साङ्गोपाङ्ग विवेचन इन ग्रन्थों में किया गया है। वैदिक संहिताओं की प्रत्येक शाखा की व्याख्या करने वाले ब्राह्मण-ग्रन्थ पृथक्-पृथक् हैं।
3. **आरण्यक** : ब्राह्मण-ग्रन्थों से सम्बद्ध आरण्यकों की रचना वनों में हुई। वैदिक कर्मकाण्ड, अनुष्ठान की उत्पत्ति और उसके महत्त्व के विषय में ऋषियों का जो चिन्तन हुआ, उसे आरण्यकों में रखा गया। ब्राह्मण-ग्रन्थों के समान ये भी सरल गद्य में ही लिखे गए। विभिन्न वैदिक संहिताओं की शाखाओं के आरण्यक भी पृथक्-पृथक् थे। कर्मकाण्डी जनसमुदाय को संन्यासधर्म की ओर लगाने का प्रयास इन आरण्यकों में हुआ है। इनका सम्बन्ध वानप्रस्थ आश्रम से था।
4. **उपनिषद्** : वैदिक साहित्य के विकास के अन्तिम चरण में उपनिषदें आती हैं। इनमें वास्तविक दर्शन-शास्त्र की विवेचना हुई, यद्यपि यह शास्त्र छुटपुट रूप से पहले भी संहिताओं और आरण्यकों में आ चुका था। गुरु-शिष्य के संवादों के रूप में उपनिषदों में बहुत गूढ़ बातें कही गई हैं। आत्मा, ब्रह्म तथा संसार के रहस्यों को इन विवेचनाओं में प्रकाशित किया गया है। वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग में होने तथा अन्तिम वैदिक दर्शन को प्रकाशित करने के करण इन्हें **वेदान्त** भी कहा जाता है।

वैदिक साहित्य के विविध पक्षों की विवेचना करने वाले ग्रन्थों को **वेदाङ्ग** कहते हैं। इनके छः भेद हैं– **शिक्षा** (उच्चारण की विधि), **कल्प** (कर्मकाण्ड तथा आचार), **छन्द** (अक्षरों की गणना के आधार पर पद्यात्मक मन्त्रों के स्वरूप का निर्धारण तथा नामकरण), **निरुक्त** (वैदिक शब्दों का निर्वचन या व्याख्या), **व्याकरण** (शब्दों की व्युत्पत्ति) तथा **ज्योतिष** (यज्ञ के समय का

निरूपण)। इन्हें उपयोगिता की दृष्टि से वैदिक साहित्य में ही रखा जाता है, यद्यपि इन विषयों से सम्बद्ध ग्रन्थ लौकिक संस्कृत भाषा में लिखे गए। इनकी रचना वैदिक भाषा की निधि को समझने के लिए हुई थी, न कि वैदिक भाषा में हुई थी। ये वेदांग प्रायः सूत्रात्मक हैं और वैदिक कर्मकाण्ड की विपुलता को संक्षिप्त वाक्यों में प्रकाशित करते हैं। मुख्य रूप से कर्मकाण्ड से सम्बद्ध कल्प-ग्रन्थों को सूत्र-साहित्य में रखा जाता है। इनके मुख्य चार भेद हैं- **श्रौतसूत्र** (वैदिक यज्ञों की प्रक्रिया बतलाने वाले), **गृह्य-सूत्र** (व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध कर्मकाण्ड का वर्णन करने वाले), **धर्मसूत्र** (धार्मिक नियमों, कर्त्तव्यों और अधिकारों का वर्णन करने वाले) तथा **शुल्व-सूत्र** (यज्ञवेदिका को नापने और उसके निर्माण का वर्णन करने वाले)।

वैदिक साहित्य के प्रमुख ग्रन्थों का परिचय

1. **ऋग्वेद :** ऋग्वेद विश्व का प्रथम व्यवस्थित उपलब्ध ग्रन्थ है। सप्तसिन्धु प्रदेश में रहने वाले आर्यों ने जो अपने धार्मिक विचार तथा दार्शनिक भावनाएँ काव्य-रूप में व्यक्त की थीं, उन्हीं का संग्रह ऋग्वेद-संहिता है। ऋग्वेद के समय में जो सांस्कृतिक चेतना थी, वही आज भी भारतीय मानस में वर्तमान है। इससे संस्कृत की धारा के निरन्तर प्रवाह की पुष्टि होती है। ऋग्वेद के रचनाकाल को लेकर अनेक मत प्रचलित हैं। परम्परागत भारतीय मत है कि वेद अपौरुषेय हैं अर्थात् किसी पुरुष या व्यक्तिविशेष ने इनकी रचना नहीं की। वेदों की संहिताओं में संकलित मन्त्रों के साथ मन्त्र-द्रष्टा ऋषि, देवता तथा छन्द का उल्लेख भी प्राप्त होता है। विदेशी विद्वान् इससे सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार इनकी भी रचना उसी प्रकार हुई, जिस प्रकार वाङ्मय के अन्य ग्रन्थों की। अपने इसी मत के आधार पर उन्होंने ऋग्वेद के काल-निर्णय का प्रयास किया। काल के विषय में उनमें स्वयं में भी ऐकमत्य नहीं है। अलग-अलग विद्वानों ने इसका काल अलग-अलग माना है। 6000 ई. पू. से लेकर 1300 ई. पू. तक इसका समय माना गया है। अधिकांश विद्वानों के अनुसार इसकी रचना 2000 ई. पू. के आसपास हुई। कतिपय पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार सिन्धुघाटी की सभ्यता के लोगों के साथ ऋग्वेद के आर्यों का युद्ध होता रहता था। आर्यों के शत्रुओं के रूप में

ऋग्वेद में पणि, दास तथा अरि का उल्लेख मिलता है। इससे उनके मतानुसार इसकी रचना के काल पर प्रकाश पड़ता है।

ऋग्वेद में अपने समय के बिखरे हुए मन्त्रों का संग्रह है, जो विभिन्न परिवारों में प्रचलित थे और जिनकी परम्परा उन परिवारों में चली आ रही थी। ऋग्वेद को इसी संग्रह के कारण **संहिता** कहा गया है। इसमें ऋचाओं का संकलन है। पूरा ऋग्वेद 10 मण्डलों में विभक्त है। प्रत्येक मण्डल में सूक्त हैं, जो पूरे ग्रन्थ में 1028 हैं। कई ऋचाओं के संग्रह को सूक्त कहते हैं, जो किसी विशेष देवता या विषयवस्तु से सम्बद्ध होते हैं। मण्डलों का विभाजन ऋषियों के परिवारों के आधार पर हुआ है। कई मण्डलों में किसी एक ही ऋषि द्वारा या उसके परिवार में पठित ऋचाओं का ही संग्रह है। कई मन्त्रों की उद्भावना ऋषिकाओं ने भी की है, जैसे – **लोपामुद्रा, अपाला, रोमशा** आदि। ऋचाओं की कुल संख्या 10580 है।

इस वेद के प्रथम तथा दशम मण्डलों का आकार अपेक्षाकृत बड़ा है। इनमें छोटे-छोटे वंशों के ऋषियों की रचनाएँ हैं। इन मण्डलों को विषयवस्तु तथा भाषा के आधार पर बाद की रचना मानते हैं। इन्हीं मण्डलों में आर्यों के दार्शनिक और लौकिक विचार व्यक्त हुए हैं। अन्य मण्डल प्राचीनतर हैं। नवम मण्डल में सोम से सम्बद्ध मन्त्रों को एकत्र किया गया है। शेष मण्डलों में एक-एक गोत्र या वंश के ऋषियों की रचनाएँ हैं, इसलिए इनको वंश-मण्डल भी कहा जाता है। सप्तम मण्डल की ऋचाएँ सबसे पुरानी मानी जाती हैं।

यद्यपि ऋग्वेद की कई शाखाएँ थीं, किन्तु आज केवल **शाकल** शाखा ही मिलती है। ऋग्वेद-संहिता से इसी शाखा का बोध होता है। ऋग्वेद में आर्यों की एक लंबी बौद्धिक परम्परा प्राप्त होती है। इस परम्परा में धार्मिक, सामाजिक और दार्शनिक विषयों का भी निरूपण हुआ है। भारत की प्राचीनतम संस्कृति के विकास के ज्ञान के लिए ऋग्वेद का अनुशीलन अपेक्षित है। धार्मिक दृष्टि से रचित सूक्तों की संख्या इस संहिता में अवश्य ही सर्वाधिक है। ऋग्वेद के सूक्तों में प्रमुखरूप से इन्द्र और अग्नि देवता की प्रार्थना है। अन्य देवताओं में सविता, रुद्र, मित्र, वरुण, सूर्य, मरुत् आदि के अतिरिक्त उषा देवी भी हैं। यही नहीं, मन्यु (क्रोध) के रूप में अमूर्त देवता की भी प्रार्थना की गई है।

इन देवताओं में नियामक तत्त्व के रूप में ऋग्वेद के ऋषियों ने ईश्वर को जगत् का नियन्ता बताया है जिसे उन्होंने पुरुष एवं हिरण्यगर्भ भी कहा है। हिरण्यगर्भ सूक्त में कहा गया है कि संसार के आरम्भ में हिरण्यगर्भ ही उत्पन्न हुआ, जो समस्त चराचर का स्वामी था और इसी ने स्वर्ग, पृथ्वी सभी को धारण किया। विशाल पर्वत और गंभीर सागर उस हिरण्यगर्भ-रूप परमात्मा (प्रजापति) के अनुशासन में ही अवस्थित हैं।

ऋग्वेद-संहिता में लौकिक विषयों पर भी ऋषियों की दृष्टि पड़ी है। इसमें द्यूत-क्रीड़ा के दोष, मण्डूकों की ध्वनि, विवाह की विधि, दान की महिमा इत्यादि विषयों का भी उल्लेख है। इससे प्रतीत होता है कि ऋषियों ने धर्म और दर्शन की विवेचना में तल्लीन होकर लौकिक सुखों की अपेक्षा नहीं की थी। उषा के सूक्तों में वैदिक ऋषियों की ललित भावना भी दृष्टिगत होती है। ये सूक्त परवर्ती गीति-काव्य के स्रोत समझे जाते हैं।

पुरुष-सूक्त में सृष्टि की प्रक्रिया का प्रतिपादन है, तो नासदीय सूक्त में सृष्टि की रहस्यमयता का भी संकेत है। सृष्टि से पहले न सत् था, न असत्। न ही उस समय मृत्यु थी, न अमरता। अन्धकार से घिरा हुआ अन्धकार ही उस समय वर्तमान था। इस प्रकार ऋग्वेद में गूढ़ दार्शनिक विचारों को भी महत्त्व दिया गया था। ऋग्वेद में बहुत से संवाद-सूक्त भी हैं, जिन्हें कुछ लोग नाटकों का प्रारम्भिक रूप भी कहते हैं। इन सूक्तों में पुरूरवा-उर्वशी तथा यम-यमी के संवाद सामान्य जीवन को व्यक्त करते हैं। इन संवादों में प्रेम, हास्य, करुणा एवं वीरता जैसे मानवीय भावों का भी चित्रण हुआ है।

ऋग्वेद के अनुशीलन से तात्कालिक आर्यों और दासों के जीवन के विषय में पर्याप्त जानकारी मिलती है। यहीं दोनों के परस्पर संघर्ष का वर्णन मिलता है। आर्य जहाँ दानी, उदार और धर्मनिष्ठ थे, वहाँ दास लोग कृपण, अनुदार तथा नास्तिक थे। वे विभिन्न प्रथाओं को मानते थे। ऋग्वेद सप्तसिन्धु प्रदेश की तात्कालिक सभ्यता और संस्कृति का चित्र उपस्थित करने वाला अद्वितीय ग्रन्थ है।

2. **यजुर्वेद** : प्राचीन काल में यजुर्वेद की कुल 101 शाखाएँ थीं। इसके दो रूप हैं– **कृष्णयजुर्वेद** तथा **शुक्लयजुर्वेद**। कृष्णयजुर्वेद की सर्वाधिक प्रसिद्ध शाखा तैत्तिरीय संहिता के रूप में हैं। शुक्ल यजुर्वेद की प्रसिद्ध शाखा **वाजसनेयी संहिता** है। कुछ लोग इसे ही मौलिक यजुर्वेद कहते

हैं। इसमें केवल मन्त्रों का संग्रह है, जबकि कृष्णयजुर्वेद की संहिता में ब्राह्मण ग्रन्थ के विषय भी मिश्रित हैं। कृष्णयजुर्वेद की अन्य संहिताएँ हैं– **मैत्रायणी, काठक, कपिष्ठल** इत्यादि। इनका प्रचार दक्षिण भारत में अधिक है।

यजुर्वेद अनुष्ठान-विषयक संहिता है। यज्ञ में अध्वर्यु के द्वारा प्रयुक्त मन्त्रों का इसमें संग्रह है। कृष्ण यजुर्वेद में इन मन्त्रों के विषय में भी चर्चाएँ हैं, किन्तु शुक्ल यजुर्वेद इन चर्चाओं से शून्य है। शुक्ल-यजुर्वेद में 40 अध्याय हैं, जिनमें विविध यज्ञों से सम्बद्ध मन्त्र संकलित हैं। इन यज्ञों में दर्शपूर्णमास, अग्निहोत्र, चातुर्मास, सोमयाग, वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणि, अश्वमेध आदि प्रमुख हैं। इसके 16वें अध्याय को रुद्राध्याय कहते हैं, जिसमें रुद्र के विविध रूपों को नमस्कार किया गया है। 34वें अध्याय में शिवसंकल्प की प्रार्थना है। 35वें अध्याय में पितरों की प्रार्थना की गई है। अन्तिम अध्याय दार्शनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें ईश्वर को संसार का नियामक कहा गया है। यही अध्याय कुछ परिवर्तनों के साथ ईशावास्योपनिषद् के रूप में आया है। यजुर्वेद में बहुत सुंदर प्रार्थना-मन्त्र हैं, जैसे :

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।

अर्थात् हे अग्निदेव धन-प्राप्ति के लिए आप हमें सन्मार्ग पर ले चलें। हे देव, आप हमारे (अच्छे-बुरे) सभी कार्यों को जानते हैं।

यजुर्वेद में कुछ मन्त्र पद्यात्मक और कुछ गद्यात्मक हैं। गद्यात्मक मन्त्र राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत हैं। कर्मकाण्ड में उपयोगी होने के कारण यजुर्वेद अन्य सभी वेदों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय है। वेदों के अधिकांश भाष्यकार यजुर्वेद पर व्याख्या लिखना अपना पहला कर्त्तव्य समझते हैं।

3. **सामवेद :** प्राचीन ग्रन्थों की सूचना के आधार पर सामवेद की 1000 शाखाएँ थीं किन्तु आज 3-4 शाखाएँ ही उपलब्ध हैं। इनमें कौथुम शाखा अधिक लोकप्रिय है। सामवेद के मन्त्रों का प्रयोग यज्ञ में देवताओं के आवाहन के लिए उचित स्वर के साथ उद्गाता द्वारा किया जाता था। इसलिए साम-मन्त्रों का पाठ नहीं, अपितु गान होता है। सामवेद छन्दोबद्ध है तथा 75 मन्त्रों को छोड़कर पूरा का पूरा ऋग्वेद से ऋचाएँ लेकर संकलित है। सामवेद के मन्त्रों के गान में लय तथा स्वर का विशेष विधान है।

सामवेद संहिता के दो भाग हैं– **पूर्वार्चिक** तथा **उत्तरार्चिक**। पूर्वार्चिक में 6 प्रपाठक तथा 650 मन्त्र हैं। इसमें आग्नेय, ऐन्द्र, पवमान तथा आरण्य-पर्व के रूप में मन्त्रों का विभाजन है। वस्तुतः इन देवताओं से सम्बद्ध मन्त्रों को पृथक्-पृथक् रखा गया है। उत्तरार्चिक को दशरात्र, संवत्सर, एकाह आदि विषयों के अनुसार व्यवस्थित किया गया है। सामवेद में ग्रामगेय (स्वर विशेष) गानों की संख्या सर्वाधिक है। आरण्यगान में संकटपूर्ण और वर्जित रागों को संकलित किया जाता था। इसलिए ये ग्रामों में नहीं गाए जाते थे। इन दोनों में सम्बद्ध क्रमशः ऊहगान और ऊह्यगान है, जो यज्ञकार्यों में साम-मन्त्रों को क्रमबद्धता प्रदान करते हैं। इस प्रकार ये चार महत्त्वपूर्ण गान इसमें हैं– ग्राम, आरण्य, ऊह तथा ऊह्य।

सामवेद का महत्त्व संगीत की दृष्टि से बहुत अधिक है। इससे ज्ञात होता है कि भारतीय संगीत का उद्‌भव किन स्रोतों से हुआ। सामवेद के रागों का विकास धार्मिक तथा सांस्कृतिक दोनों प्रकार के गीतों से हुआ। धार्मिक दृष्टि से यजुर्वेद और लौकिक दृष्टि से अथर्ववेद सामवेद की अपेक्षा अधिक महत्त्व रखते हैं। सामगान की अनेक विधियों में (जो सामवेद के ब्राह्मण-ग्रन्थों में विहित हैं) अब कुछ ही शेष हैं।

4. **अथर्ववेद** : यज्ञ की दृष्टि से उक्त तीन वेदों की अपेक्षा अथर्ववेद का कम महत्त्व है। इसका कारण इसमें यज्ञ से भिन्न विषयों का संकलन है। बहुत दिनों तक कर्मकाण्ड से इसे पृथक् रखा गया था। **त्रयी** का अर्थ तीन वेद होता है, जिसमें अथर्ववेद का समावेश नहीं होता। किन्तु वैदिक परम्परा में ही उसे **ब्रह्मवेद** कहा गया है अर्थात् वह ब्रह्मा नामक ऋत्विज् के उपयोग के लिए था। वस्तुतः अथर्ववेद को **अथर्वाङ्गिरस** वेद कहा जाता था। अर्थात् इसके दो रचयिता थे – **अथर्वा** और **अङ्गिरा**। इस वेद के शान्तिपरक मन्त्रों के द्रष्टा अथर्वा हैं, जिन मन्त्रों में इन्द्रजाल का उद्देश्य जनकल्याण है। दूसरी ओर अङ्गिरा उन मन्त्रों के रचयिता हैं, जिनका संबंध किसी की हानि करने से है।

इस वेद का विभाजन 20 काण्डों में किया गया है, जिनमें ऋग्वेद के समान ही सूक्त और मन्त्र हैं। सूक्तों की संख्या 731 तथा मन्त्रों की 5849 है। इनमें से लगभग 1200 मन्त्र ऋग्वेदसंहिता से लिए गए हैं। इस वेद का छठा भाग गद्य में है। काण्डों के विभाजन में कोई विषय-व्यवस्था नहीं है

किन्तु एक सूक्त में किसी एक ही विषय से सम्बद्ध मन्त्र हैं। आरंभिक काण्डों का संकलन प्रायः यान्त्रिक है, क्योंकि प्रथम काण्ड में 4 मन्त्रों वाले, द्वितीय काण्ड में 5 मन्त्रों वाले, तृतीय में 6 मन्त्रों वाले, चतुर्थ काण्ड में 7 मन्त्रों वाले और पंचम काण्ड में न्यूनतम 8 मन्त्रों वाले सूक्त रखे गए हैं। छठे काण्ड में 142 सूक्तों में सभी 3 मन्त्र वाले हैं। इसी प्रकार सातवें काण्ड में 118 सूक्तों में 1-2 मन्त्रों वाले सूक्त हैं। पन्द्रहवें-सोलहवें काण्ड गद्य में है तथा भाषा-शैली की दृष्टि से ब्राह्मण-ग्रन्थों के समान लगते हैं।

अथर्ववेद में ही सर्वप्रथम लौकिक विषयों को व्यापक महत्त्व दिया गया है। इसलिए इसकी विषय-वस्तु में बहुत विविधता मिलती है। जीवन के प्रायः सभी पक्षों का स्पर्श इसमें हुआ है, किन्तु विशेष रूप से तत्कालीन विश्वासों का प्रकाशन इसमें अधिक है। इसी क्रम में अभिचार (मारण, मोहन, उच्चाटन आदि) से सम्बद्ध क्रियाओं का निरूपण है। शत्रुनाश, आरोग्य-प्राप्ति, गृह-सुख, कृषि में वृद्धि, भूत-प्रेतों का निवारण, कीट-पतंगों का नाश, इष्ट वस्तु का लाभ, विवाह, वाणिज्य, पितृपूजा आदि का विवेचन अथर्ववेद के मन्त्रों में है। विविध रोगों का स्वरूप बतलाकर उनके निवारण की व्यापक विधि इसमें दी गई है। कहीं सर्प-विष के नाश की प्रार्थना है, तो कहीं रोगों के निवारण के लिए शमीवृक्ष से प्रार्थना की गई है। कहीं जीविका-प्राप्ति के मन्त्र हैं तो कहीं पहेलियाँ दी गई हैं। ब्रह्मचर्य की महत्ता बतलाने के साथ-साथ सौमनस्य के लिए प्रार्थना भी की गई है– "मैं तुम्हारे मन को सौहार्द तथा सौमनस्य से युक्त करता हूँ। सभी लोग परस्पर प्रेम रखें जैसे गाय अपने बछड़े से रखती है। पुत्र पिता का अनुगामी हो, माता वात्सल्यमयी हो, पत्नी पति से मधुर वाणी का व्यवहार करे। भाई-भाई से द्वेष न करे, न बहन-बहन से द्वेष रखें, सभी अच्छे संकल्प लेकर कल्याण युक्त वाणी बोलें।" अथर्ववेद के 12वें काण्ड में बृहद् भूमिसूक्त है, जिसमें पृथ्वी की महत्ता का प्रतिपादन है। इसी में कहा गया है– **माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः**। अर्थात् पृथ्वी मेरी माता है, मैं उसका पुत्र हूँ।

अथर्ववेद में दार्शनिक सूक्त भी आए हैं, जो ब्रह्मन्, तपस् और असत् के विषय में विचार करते हैं। ये विचार बाद में उपनिषदों में विकसित हुए। सामान्य वैदिक धर्म की मुख्य धारा से पृथक् विशुद्ध लोक-प्रचलित

विश्वासों का प्रतिपादक होने के कारण अथर्ववेद का वैदिक साहित्य में स्वतन्त्र महत्त्व है।

ब्राह्मण-ग्रन्थ

भारतीय परंपरा मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को वेद कहती है (मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्), किन्तु आधुनिक विचारक **वेद** से केवल संहिता-भाग का ही ग्रहण करते हैं। **ब्राह्मण** शब्द **ब्रह्मन्** से बना है जिसका अर्थ है– वेद (ब्रह्म) से सम्बद्ध। अतः मन्त्रों की कर्मकाण्डपरक व्याख्या को ब्राह्मण कहते हैं। संहिताओं की विभिन्न शाखाओं की व्याख्या करने के लिए पृथक्-पृथक् ब्राह्मण ग्रन्थ लिखे गए। यद्यपि इनका स्वरूप मूलतः धार्मिक है, पर राजनैतिक, सामाजिक तथा दार्शनिक बातों का भी इनमें समावेश है। ये सभी बातें मन्त्रों की व्याख्या से ही जोड़ी गई हैं। वैदिक कर्मकाण्ड का विकास इन्हीं ग्रन्थों से जाना जा सकता है। इनके अतिरिक्त सृष्टि से सम्बद्ध पौराणिक कथाएँ भी ब्राह्मणों में आई हैं। वस्तुतः वैदिक संहिताओं के प्रतीकात्मक अर्थों को ब्राह्मणों में विस्तार दिया गया है। इनमें मत्स्य द्वारा सृष्टि की रक्षा, शुनःशेप की बलि देने से रक्षा इत्यादि कथाएँ हैं। यहाँ प्रत्येक कार्य की विधि से कोई न कोई आख्यान जोड़ दिया गया है।

ऋग्वेद-संहिता से सम्बद्ध दो ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं– **ऐतरेय** और **कौषीतकि**। पहले में चालीस और दूसरे में तीस अध्याय हैं। दोनों में विषयवस्तु की बहुत समानता है। इनमें सोमयाग, अग्निहोत्र, राजसूय, राज्याभिषेक इत्यादि का विवरण दिया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण ऐतरेय महीदास की रचना है, जबकि कहोड़ कौषीतकि ने **कौषीतकि ब्राह्मण** की रचना की। इन दोनों में सरल वाक्यों में युक्त गद्य का प्रयोग है।

शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं के ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम **शतपथ** है, किन्तु दोनों शाखाओं के शतपथ ब्राह्मण पृथक्-पृथक् हैं। इनमें अध्यायों की योजना में अन्तर है। माध्यन्दिन शतपथ में 14 काण्ड तथा 100 अध्याय हैं, जबकि काण्व शाखा के शतपथ में 104 अध्याय तथा 17 काण्ड हैं। शतपथ ब्राह्मण ऋग्वेद के बाद वैदिक साहित्य में सबसे बड़ा ग्रन्थ है। इसमें दर्शपूर्णमास, पितृयज्ञ (श्राद्ध), उपनयन, स्वाध्याय, अश्वमेध, सर्वमेध इत्यादि का वर्णन है। पूरे ब्राह्मण ग्रन्थ में याज्ञवल्क्य को प्रामाणिक माना गया है, क्योंकि इसी ऋषि ने सूर्य की उपासना करके शुक्ल यजुर्वेद की

प्राप्ति की थी। अग्नि-चयन वाले अध्याय में शाण्डिल्य ऋषि को प्रामाणिक माना गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् इसी ब्राह्मण का अन्तिम भाग है।

कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध तैत्तिरीय ब्राह्मण है, जो वास्तव में तैत्तिरीय संहिता का ही परिशिष्ट है। संहिता में कुछ अनुक्त विषय रह गए थे जिनकी पूर्ति इस ब्राह्मण में हुई है। इसकी अन्य संहिताओं (काठक, मैत्रायणी आदि) में तो ब्राह्मण ग्रन्थ में अंग रूप से ही मिले हुए हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण में तीन अष्टक या काण्ड हैं, जिनमें अग्न्याधान, गवामयन, सौत्रामणि इत्यादि यज्ञों का वर्णन है।

सामवेद से सम्बद्ध कई ब्राह्मण हैं, जैसे– ताण्ड्य (पञ्चविंश), षड्विंश, जैमिनीय इत्यादि। ताण्ड्य ब्राह्मण में प्राचीन दन्तकथाओं के साथ व्रात्यों (आर्य जाति से बहिष्कृत वर्ग) के पुनः वर्णप्रवेश का वर्णन है। षड्विंश ब्राह्मण में चमत्कार और शकुन से सम्बद्ध अद्भुत ब्राह्मण नामक एक अध्याय है। जैमिनीय ब्राह्मण में तीन भाग हैं तथा यह शतपथ के समान महत्त्वपूर्ण है। इसमें विज्ञान की भी सामग्री मिलती है। इनके अतिरिक्त सामवेद से सम्बद्ध दैवत, आर्षेय, सामविधान, वंश, छान्दोग्य, संहितोपनिषद् इत्यादि कई ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं। अथर्ववेद से सम्बद्ध एक गोपथ ब्राह्मण मिलता है, जिसमें दो भाग हैं– पूर्व और उत्तर गोपथ। विद्वानों के अनुसार अथर्ववेद का कोई ब्राह्मण नहीं था, बाद में विभिन्न ब्राह्मणों से सामग्री लेकर इसका निर्माण हुआ। इसमें सृष्टि, ब्रह्मा, ब्रह्मचर्य, गायत्री आदि की महिमा का वर्णन है। इसमें ओंकार के साथ त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) का उल्लेख है।

ब्राह्मणग्रन्थों में सांस्कृतिक तत्त्वों का बीज भी प्राप्त होता है, जैसे– सृष्टि की व्याख्या, वर्णाश्रम-धर्म, स्त्री-महिमा, अतिथि-सत्कार, यज्ञ का महत्त्व, सदाचार, विद्यावंश इत्यादि।

आरण्यक

आरण्यकों की रचना वनों में हुई। वनों में रहकर चिन्तन करने वाले ऋषियों ने वैदिक कर्मकाण्डवाद से पृथक् रहकर उनमें प्रतीक खोजने की चेष्टा की। ब्राह्मणों के परिशिष्ट के रूप में विकसित आरण्यकों में यज्ञ के अंतर्गत अध्यात्मवाद का पल्लवन किया गया। कर्मकलाप की यही व्याख्या आगे चलकर मीमांसा-दर्शन, धर्मशास्त्र तथा कर्म-वाद में विकसित हुई। वानप्रस्थों के यज्ञों का विधान करने के साथ-साथ उपनिषदों के ज्ञान-काण्ड की भूमिका

भी आरण्यकों में तैयार की गई। प्राणविद्या का विवेचन आरण्यकों की विशिष्टता है।

इस समय 7 आरण्यक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। ऋग्वेद के आरण्यक– **ऐतरेय** और **कौषीतकि।** ये दोनों इन्हीं नामों वाले ब्राह्मण-ग्रन्थों से सम्बद्ध हैं और उनके अंग हैं। यजुर्वेद के **बृहदारण्यक, तैत्तिरीयारण्यक** तथा **मैत्रायणीयारण्यक** नामक तीन आरण्यक हैं। सामवेद के **जैमिनीय उपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्** ये दो आरण्यक मिलते हैं। इन सभी में अपनी शाखाओं के सम्बद्ध कर्मों का विचार किया गया है, तथापि संन्यास-धर्म का भी महत्त्व बतलाया गया है। बृहदारण्यक में कहा गया है कि इसे जानकर मनुष्य मुनि बन जाता है। आत्मा को जानकर वह ब्रह्मलोक की कामना करते हुए परिव्राजक बनकर पुत्र, वित्त और लोक की एषणा (इच्छा) का त्याग करता है तथा भिक्षाचर्या करता है।

उपनिषद्

वैदिक-साहित्य में प्रचार की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व उपनिषदों का है। इनकी महत्ता दार्शनिक विचारों के कारण है, जिनसे ये देश-विदेश में लोकप्रिय हैं। दाराशिकोह ने इनका अनुवाद फारसी में किया था। पुनः यूरोपीय भाषाओं में इनका अनुवाद हुआ। फ्रांसीसी दार्शनिक शापेनहावर ने कहा था कि उपनिषदें मेरे जीवन तथा मृत्यु दोनों के लिए सान्त्वनादायक हैं।

उपनिषदों की रचना बाद में भी होती रही। मौलिक उपनिषदों की संख्या 12-13 थी, किन्तु कालान्तर में उपनिषदें सौ से अधिक हो गईं। इन परवर्ती उपनिषदों में विभिन्न मतावलम्बियों ने अपने धर्मों का सार प्रकट किया, किन्तु इनका सम्बन्ध वैदिक साहित्य से स्थापित नहीं हो सकता। वैदिक शाखाओं में पृथक्-पृथक् रूप से दार्शनिक चिन्तन के लिए विकसित उपनिषदों की गणना इस प्रकार की जाती है–

ऋग्वेद से सम्बद्ध	:	ऐतरेय तथा कौषीतकि।
कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध	:	कठ, श्वेताश्वतर, मैत्रायणी (मैत्री) तथा तैत्तिरीय।
शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध	:	ईश तथा बृहदारण्यक।
सामवेद से सम्बद्ध	:	छान्दोग्य तथा केन।
अथर्ववेद से सम्बद्ध	:	प्रश्न, मुण्डक तथा माण्डूक्य।

उपनिषदों में प्रायः संवादों के द्वारा तत्त्वज्ञान समझाया गया है। उनमें पुरुष के शरीर में प्राणादि की प्रतिष्ठा, आत्मा से सृष्टि की उत्पत्ति, विद्या और अविद्या का अन्तर, जगत् और आत्मा के स्वरूप, ब्रह्मतत्त्व इत्यादि विषय बहुत रोचक शैली में समझाए गए हैं। कहीं प्रश्नोत्तर के द्वारा तो कहीं दृष्टान्तों के द्वारा इन विषयों का निरूपण हुआ है। उपनिषदों में गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग है। बृहदारण्यक तथा छान्दोग्य बड़ी उपनिषदें हैं, शेष छोटी। माण्डूक्योपनिषद् में तो केवल 12 वाक्य हैं। ईशोपनिषद् में 18 मन्त्र हैं, जो यजुर्वेद के 40वें अध्याय के रूप में हैं। कठोपनिषद् में यम-नचिकेता के संवाद में आत्मा का स्वरूप बतलाया गया है। बृहदारण्यक में जनक-याज्ञवल्क्य के शास्त्रार्थ से ब्रह्म का निरूपण है। उपनिषदों का तात्पर्य जीव, जगत् और ब्रह्म के अभेद का निरूपण ही है। इस उपनिषद् में याज्ञवल्क्य की विदुषी पत्नी मैत्रेयी तथा उनसे शास्त्रार्थ करने वाली गार्गी की कथा आई है, जिससे उस युग की विदुषी स्त्रियों का पता लगता है।

उपनिषदों के आधार पर वेदान्त-दर्शन का विकास हुआ, जिसके फलस्वरूप **ब्रह्मसूत्र** की रचना बादरायण ने की। महाभारत के भीष्मपर्व में अवस्थित **गीता** भी उपनिषदों के दर्शन को ही पौराणिक शैली में प्रस्तुत करती है। इनमें कर्ममार्ग के साथ-साथ ज्ञानमार्ग का भी प्रतिपादन है। उपनिषदों में परम सुख की प्राप्ति का मार्ग समझाया गया है। ब्रह्म के लक्षण हैं– **सत्, चित्** और **आनन्द**। इन तीनों की व्याख्या उपनिषदों में सम्यक् रूप से की गई है।

शंकराचार्य ने मुख्य 11 उपनिषदों पर भाष्य लिखकर अद्वैतवाद का प्रवर्तन किया। इस प्रकार वेदान्त के विभिन्न सम्प्रदायों में उपनिषदों की अपने-अपने ढंग से व्याख्या की गई। उपनिषदों में दर्शन-शास्त्र के अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं।

वेदाङ्ग

जब वैदिक साहित्य का विस्तार बहुत अधिक हो गया तथा वैदिक भाषा के स्थान पर लौकिक संस्कृत चल पड़ी, तब वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करना तथा अर्थ समझना कठिन हो गया। यास्क ने कहा है कि वैदिक अर्थों को समझने में कठिनाई का अनुभव करने वाले लोगों ने निरुक्त तथा अन्य वेदाङ्गों की रचना की। वेदों के छः अंग माने गए– **शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त,**

ज्यौतिष तथा **छन्द**। इन्हें समझने वाला व्यक्ति ही वेदों का सही उच्चारण कर सकता था तथा अर्थ समझ सकता था। इन सभी शास्त्रों के ग्रन्थ लौकिक संस्कृत में लिखे गए क्योंकि इनके विकास का कारण ही था– वैदिक संस्कृत का प्रयोग समाप्त हो जाना। इनका काल 800 ई. पू. से प्रारंभ होता है। यद्यपि कुछ लोग 3000 ई. पू. तक इन ग्रन्थों के आविर्भाव-काल को ले जाते हैं।

- **शिक्षा** : उच्चारण का विज्ञान है, जो स्वर-व्यञ्जन के उच्चारण का विधान करता है। इसका विस्तार **प्रातिशाख्य** नामक ग्रन्थों में मिलता है। वेदों की पृथक्-पृथक् शाखाओं का उच्चारण बतलाने के कारण इन्हें प्रातिशाख्य कहा जाता है। ऋक्प्रातिशाख्य शौनक-रचित ग्रन्थ है, जो ऋग्वेद के अक्षरों, वर्णों, स्वरों की संधियों का विवेचन करता है। इसी प्रकार अन्य वेदों के भी प्रातिशाख्य हैं, जो उन वेदों के उच्चारणों की विशिष्टता बतलाते हैं। ये सभी सूत्र रूप में हैं।
- **कल्प** : मुख्यतः वैदिक कर्मकाण्ड का प्रतिपादन करने वाला वेदाङ्ग है। कल्प का अर्थ है विधान। यज्ञ-सम्बन्धी विधान कल्पसूत्रों में दिए गए हैं। कल्प के चार भेद हैं, जिन्हें **श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र** तथा **शुल्वसूत्र** कहते हैं। ये चारों विभिन्न वेदों के लिए पृथक्-पृथक् हैं। श्रौतसूत्रों में श्रौतयज्ञों का विधान है, जैसे– दर्शपूर्णमास, अग्निहोत्र, चातुर्मास्य, वाजपेय, अतिरात्र, पितृमेध इत्यादि। इस समय आश्वलायन, शांखायन (दोनों ऋग्वेद के), कात्यायन (शुक्ल यजु.), भारद्वाज, आपस्तम्ब, वाराह, मानव, बौधायन (सभी कृष्ण यजु.), जैमिनीय (साम.), वैतान, (अथर्व.) इत्यादि श्रौतसूत्र उपलब्ध हैं। गृह्यसूत्र गृह्याग्नि में होने वाले संस्कारों तथा गृह्ययागों का वर्णन करते हैं, जैसे – उपनयन, विवाह आदि। सभी वेदों से सम्बद्ध लगभग 20 गृह्यसूत्र प्राप्त हैं। धर्मसूत्रों में मानव-धर्म, समाज-धर्म, राजधर्म तथा पुरुषार्थों का वर्णन है। इस समय छः धर्मसूत्र मिलते हैं– **गौतम, आपस्तम्ब, वसिष्ठ, बौधायन, हिरण्यकेशी** और **विष्णुधर्मसूत्र**। ये धर्मसूत्र ही परवर्ती स्मृतियों के आधार हैं। शुल्व का अर्थ है मापने का सूत (धागा)। इन सूत्रों में यज्ञवेदिका के निर्माण आदि का वर्णन रेखागणित (ज्यामिति) की सहायता से किया गया है।
- **व्याकरण** : इसे वेदों का मुख कहा गया है। इस शास्त्र में प्रकृति और प्रत्यय के रूप में विभाजन करके पदों की व्युत्पत्ति बतलाई जाती है।

व्याकरण की बहुत लम्बी परम्परा इन्द्र आदि वैयाकरणों से चली, किन्तु उस परम्परा के अवशेष उद्धरणों में ही पाए जाते हैं। प्रथम उपलब्ध व्याकरणग्रन्थ के प्रणेता पाणिनि ही हैं, जिन्होंने **अष्टाध्यायी** के रूप में वैदिक और लौकिक संस्कृत दोनों भाषाओं का व्याकरण लिखा है। व्याकरण से वेदों की रक्षा होती है तथा वही पदशुद्धि का विचार करता है। सम्प्रति पाणिनि की अष्टाध्यायी ही व्याकरण का प्रतिनिधि-ग्रन्थ है, जिस पर टीकाओं की तथा परवर्ती विकास की समृद्ध परम्परा मिलती है।

- **निरुक्त :** इसका अर्थ है निर्वचन। वैदिक शब्दों का अर्थ व्यवस्थित रूप से समझाना ही निरुक्त का प्रयोजन है। इस समय यास्क-रचित निरुक्त ही एक मात्र उपलब्ध निरुक्त है, यद्यपि इसमें प्राचीन निरुक्तकारों के भी नाम आए हैं। वैदिक शब्दों का संग्रह **निघण्टु** (5 अध्याय) के रूप में प्राप्त होता है। उसी की व्याख्या यास्क ने निरुक्त के 14 अध्यायों में की है। यास्क का काल 800 ई. पू. माना जाता है। निरुक्त वेदार्थज्ञान की कुंजी है।
- **छन्दस् :** पद्यबद्ध वेदमन्त्रों के सही-सही उच्चारण के लिए उपयोगी वेदाङ्ग है। इससे वैदिक मन्त्रों के चरणों की व्यवस्था होती है। इसका ज्ञान वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के लिए नितान्त आवश्यक है। इससे छन्दः शास्त्र का महत्त्व सिद्ध होता है। वेदों में 7 मुख्य छन्द प्रयुक्त हैं– गायत्री (8 अक्षरों के तीन चरण), अनुष्टुप् (8 अक्षरों के चार चरण), त्रिष्टुप् (11 अक्षरों के चार चरण) इत्यादि। छन्दः शास्त्र जानने से वैदिक मन्त्रों के चरणों की व्यवस्था समझी जा सकती है तथा मन्त्र-पाठ के समय उचित विराम हो सकता है।
- **ज्यौतिष :** यह काल का निर्धारण करने वाला शास्त्र है। वैदिक यज्ञ काल की अपेक्षा रखते हैं, और वे किसी निश्चित काल में ही सम्पादित होते हैं, तभी उनका फल मिलता है। इसका निश्चय ज्यौतिष करता है। काल का विभाजन, मुहूर्त का निश्चय, ग्रहों-नक्षत्रों की गति का निर्धारण इत्यादि ज्यौतिष शास्त्र के ही विषय हैं। लगधाचार्य ने इन कार्यों के लिए **वेदाङ्ग ज्यौतिष** नामक ग्रन्थ लिखा था, जिसका समय 1400 ई. पू. से लेकर 800 ई. पू. के बीच माना जाता है। इसके दो संस्करण हैं–

आर्च ज्यौतिष (ऋग्वेद से सम्बद्ध) जिसमें 36 श्लोक हैं तथा **याजुष ज्यौतिष** (यजुर्वेद से सम्बद्ध), जिसमें 43 श्लोक हैं।

वेदों और वेदाङ्गों के सम्यक् ज्ञान के लिए कालान्तर में कुछ परिशिष्ट ग्रन्थ भी लिखे गए। इन ग्रन्थों को **अनुक्रमणी** कहते हैं। इनमें देवता, ऋषि, छन्द, सूक्त इत्यादि की गणना हुई है। सभी वेदों की पृथक्-पृथक् अनुक्रमणियाँ हैं। ऋग्वेद की अनुक्रमणियाँ शौनक ने लिखीं। ऋग्वेद के देवताओं की अनुक्रमणी के रूप में छन्दोबद्ध ग्रन्थ **बृहद्देवता** उपलब्ध है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें आठ अध्याय तथा 1204 श्लोक हैं। इसी प्रकार **ऋक्सर्वानुक्रमणी, छन्दोऽनुक्रमणी, आर्षानुक्रमणी** आदि परिशिष्ट ग्रन्थ हैं। यजुर्वेद के परिशिष्ट कात्यायन ने रचे। अथर्ववेद के परिशिष्टों में **सर्वानुक्रमणी** महत्त्व रखती है। इसमें अथर्ववेद के प्रत्येक काण्ड के देवताओं, ऋषियों, सूक्तों और मन्त्रों का विवरण है। ये परिशिष्ट वेदों की रक्षा करने में महत्त्वपूर्ण योगदान करते रहे हैं। इन्हीं के कारण वेदों में अक्षर तक की न्यूनता और वृद्धि नहीं हो सकी है।

इस प्रकार संस्कृत साहित्य के प्रथम चरण में विकसित वैदिक वाङ्मय का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इस साहित्य की व्याख्याएँ परवर्ती युग में बहुत दिनों तक होती रहीं। व्याख्याओं के सम्बंध में विभिन्न मत चलते रहे और विभिन्न भाषाओं में इनके अनुवाद भी होते रहे हैं। आधुनिक युग में इन वैदिक ग्रन्थों के अच्छे-अच्छे संस्करण व्याख्याओं और अनुवादों के साथ प्रकाशित हुए हैं।

सारांश

वैदिक साहित्य का विकासकाल 2000 ई. पू. से 800 ई. पू. तक माना जाता है। इस साहित्य का विकास 4 चरणों में हुआ है– संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। वैदिक मन्त्रों का संग्रह संहिता कहा जाता है। इसके 4 भाग हैं। वैदिक मन्त्रों का प्रयोग यज्ञों में किया जाता है। यज्ञों में चार ऋत्विक् होते हैं – होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा। इन चारों ऋत्विजों से सम्बन्धित मन्त्र मुख्य रूप से क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में हैं।

- ***ऋग्वेद :*** *ऋग्वेद 10 मण्डलों में विभक्त हैं। इन मण्डलों में सूक्तों की संख्या 1028 तथा मन्त्रों की संख्या 10580 है। यह विश्व का प्रथम व्यवस्थित संस्कृत*

ग्रन्थ है। इसकी केवल शाकल शाखा आज उपलब्ध है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में सृष्टि-प्रक्रिया एवं नासदीय सूक्त में सृष्टि के रहस्य का वर्णन है। इसमें अनेक संवाद-सूक्त भी पाए जाते हैं यथा—यम-यमी संवाद सूक्त तथा पुरूरवा-उर्वशी संवाद-सूक्त जो संस्कृत नाटकों के बीज माने जाते हैं। ऋग्वेद में सिन्धुघाटी की तत्कालीन सभ्यता और संस्कृति का परिचय मिलता है।

- **यजुर्वेद** : यजुर्वेद की पहले 101 शाखाएँ थीं। इसके दो भेद हैं— शुक्ल यजुर्वेद तथा कृष्ण यजुर्वेद। शुक्ल यजुर्वेद की प्रसिद्ध शाखा वाजसनेयी संहिता है। इसमें केवल मन्त्रों का संग्रह है। कृष्ण यजुर्वेद की प्रसिद्ध शाखा तैत्तिरीय संहिता है। इसके कुछ मन्त्र पद्यात्मक तथा कुछ गद्यात्मक हैं। शुक्ल यजुर्वेद में 40 अध्याय हैं, जिनमें दर्शपौर्णमास, अग्निहोत्र आदि अनेक यज्ञों से सम्बद्ध मन्त्र हैं।
- **सामवेद** : साम का तात्पर्य गान है। प्राचीन प्रामाण्य के आधार पर सामवेद की एक हजार शाखाएँ थी. किंतु आज तीन-चार शाखाएँ ही उपलब्ध हैं। सामवेद से भारतीय संगीत की उत्पत्ति हुई है।
- **अथर्ववेद** : अथर्ववेद को अथर्वाङ्गिरस वेद भी कहा जाता है। इसके दो रचयिता थे अथर्वा और अङ्गिरा। इसमें बीस काण्ड तथा 6000 मन्त्र हैं, जो 731 सूक्तों में विभक्त हैं। इस वेद में अभिचार (मारण, मोहन, उच्चाटन आदि), शत्रुनाश, आरोग्य-प्राप्ति, कृषिवृद्धि, विवाह, वाणिज्य आदि से सम्बद्ध मन्त्र हैं।
- **ब्राह्मणग्रन्थ** : वैदिक मन्त्रों की कर्मकाण्डपरक व्याख्या करने वाले ग्रन्थ **ब्राह्मण ग्रन्थ** कहलाते हैं। ऋग्वेद संहिता से सम्बद्ध दो ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध हैं— **ऐतरेय ब्राह्मण** तथा **कौषीतकि ब्राह्मण**। शुक्ल यजुर्वेद का ब्राह्मण **शतपथ** है और कृष्ण यजुर्वेद का ब्राह्मण **तैत्तिरीय** है। सामवेद से सम्बद्ध अनेक ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। जैसे— ताण्ड्य, षड्विंश, जैमिनीय आदि। **जैमिनीय ब्राह्मण** में विज्ञान से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त होती है। अथर्ववेद का एक ही ब्राह्मण ग्रन्थ मिलता है, जिसका नाम गोपथ है।
- **आरण्यक** : ऋषियों के वैदिक कर्मकाण्ड से सम्बद्ध चिन्तनप्रधान ग्रन्थों को आरण्यक नाम दिया गया है। सम्प्रति सात आरण्यक उपलब्ध हैं, जिनमें ऐतरेय और कौषीतकि ऋग्वेद के हैं, बृहदारण्यक, तैत्तिरीय और मैत्रायणीय यजुर्वेद के हैं और जैमिनीय तथा छान्दोग्य सामवेद के हैं।
- **उपनिषद्** : वैदिक साहित्य के ज्ञान-प्रधान अंश को उपनिषद् कहते हैं। वैदिक साहित्य का अन्तिम भाग होने के कारण इसे वेदान्त भी कहते हैं। मुख्य उपनिषद् 12 हैं, किन्तु आज इनकी उपलब्ध-संख्या लगभग 125 है। उपनिषदों

में आत्मा, जीव-जगत्, ईश्वर, ब्रह्म आदि पर विचार किया गया है। इनके आधार पर वेदान्तदर्शन का विकास हुआ है।

- ***वेदाङ्ग*** *: वैदिक साहित्य से सम्बद्ध शास्त्रों को वेदाङ्ग कहा गया है। वेदाङ्ग छः हैं– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यौतिष।*
- ***शिक्षा*** *: शिक्षा उच्चारण का शास्त्र है।*
- ***कल्प*** *: कल्प का अर्थ विधान है। इनमें यज्ञ सम्बन्धी विधान उपलब्ध होते हैं। ये कल्पसूत्र चार प्रकार के हैं– श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र तथा शुल्वसूत्र।*
- ***व्याकरण*** *: व्याकरण में पदों की व्युत्पत्ति बतलाई गई है।*
- ***निरुक्त*** *: निरुक्त का अर्थ निर्वचन है। यह वेदार्थज्ञान की कुँजी है।*
- ***छन्द*** *: वैदिक मन्त्रों की पद्यबद्ध रचना का नियामक छन्दः शास्त्र है।*
- ***ज्यौतिष*** *: ज्यौतिष, काल, ग्रह, नक्षत्र आदि का निर्धारण करने वाला शास्त्र है।*
- ***अनुक्रमणी*** *: अनुक्रमणी में वैदिक देवता, ऋषि, सूक्त आदि की गणना की गई है।*

अभ्यास-प्रश्न

1. वैदिक साहित्य के विकास का समय बताइए।
2. संहिता किसे कहते हैं? मुख्य-मुख्य संहिताओं के नाम लिखिए।
3. ऋत्विजों के नाम तथा कार्यों का उल्लेख कीजिए?
4. ब्राह्मणग्रन्थों की रचना का उद्देश्य क्या था?
5. किन ग्रन्थों से वानप्रस्थ आश्रम का संबंध था?
6. उपनिषदों को वेदान्त क्यों कहते हैं?
7. वेदाङ्ग किसे कहते हैं तथा इसके अन्तर्गत किन-किन शास्त्रों को लिया गया है?
8. कल्पसूत्र के मुख्य भेदों के नाम लिखिए।
9. ऋग्वेद में आर्यों की किन भावनाओं का संग्रह है?
10. ऋग्वेद में कितने मण्डल हैं?
11. सूक्त किसे कहते हैं?
12. ऋग्वेद के सूक्तों की संख्या बताइए।
13. ऋग्वेद में ऋचाओं की कुल संख्या कितनी है?

14. ऋग्वेद में किस मण्डल की ऋचाएँ सबसे पुरानी मानी जाती हैं?
15. आर्य लोगों ने ऋग्वेद में किन-किन देवताओं को प्रमुख स्थान दिया?
16. ऋग्वेद में मुख्यतः किन लौकिक विषयों का वर्णन मिलता है?
17. सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन ऋग्वेद में कौन से सूक्त में किया गया है।
18. यजुर्वेद की मुख्य शाखाएँ बताइए।
19. शुक्ल यजुर्वेद की प्रसिद्ध शाखा का नाम लिखिए।
20. यजुर्वेद की अधिक लोकप्रियता का कारण क्या है?
21. सामवेद के मन्त्रों का गायन कौन-सा ऋत्विक् करता है?
22. सामवेद के किन गानों की संख्या सर्वाधिक है?
23. सामवेद के विषय में 50 शब्दों में लिखिए।
24. वेदत्रयी में गिने जाने वाले वेदों के नाम बताइए।
25. अथर्ववेद के रचयिता कौन थे?
26. अथर्ववेद के मन्त्रों में किन-किन बातों का वर्णन है?
27. ब्राह्मण ग्रन्थों से क्या तात्पर्य है?
28. ऋग्वेद संहिता से सम्बद्ध ब्राह्मण के नाम लिखिए।
29. ऐतरेय ब्राह्मण किसकी रचना है?
30. ब्राह्मण ग्रन्थों में सबसे बड़ा कौन-सा ग्रन्थ है।
31. याज्ञवल्क्य ने शुक्ल यजुर्वेद की प्राप्ति कैसे की?
32. ब्राह्मण ग्रन्थों में किन विषयों का वर्णन हुआ है?
33. आरण्यकों की रचना कहाँ हुई?
34. आरण्यकों में किन विषयों की चर्चा की गई है?
35. मुख्य आरण्यक ग्रन्थों के नामों का उल्लेख कीजिए।
36. शापेनहावर ने उपनिषदों के विषय में क्या कहा था?
37. मौलिक उपनिषदों की संख्या कितनी थी? उनके नाम लिखिए।
38. यम-नचिकेता का संवाद किस उपनिषद् में है?
39. उपनिषदों के आधार पर कौन से दर्शन का विकास हुआ?
40. ब्रह्मसूत्र के रचयिता कौन थे?
41. ब्रह्म के किन रूपों की व्याख्या उपनिषदों में की गई है?
42. उपनिषदों का प्रथम भाष्य किसने लिखा है?
43. निरुक्त का संकलन क्यों किया गया?
44. वेदाङ्ग शब्द का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
45. प्रातिशाख्य नामक ग्रन्थ में किस वेदाङ्ग का विस्तार हुआ है?

46. कल्प से आप क्या समझते हैं तथा उसके मुख्य भेद कौन-कौन से हैं?
47. गृह्याग्नि में होने वाले संस्कारों का वर्णन किस सूत्र में किया गया है?
48. परिशिष्ट ग्रन्थों की रचना क्यों की गई?
49. नीचे लिखे वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–
   (क) मानवधर्म, समाजधर्म, राजधर्म और पुरुषार्थों का वर्णन .... सूत्र में हुआ है।
   (ख) .... को वेदों का मुख कहा गया है।
   (ग) वैदिक शब्दों का वैज्ञानिक रीति से अर्थ समझाना .... का प्रयोजन है।
   (घ) वैदिक मन्त्रों की पद्यबद्ध रचना का नियामक .... शास्त्र है।
   (ङ) काल का निर्धारण करने वाला शास्त्र .... कहलाता है।

तृतीय अध्याय

रामायण, महाभारत एवं पुराण

रामायण और महाभारत संस्कृत भाषा के ऐसे महान् ग्रन्थ हैं, जिन पर भारत की बहुत बड़ी साहित्यिक सम्पदा आश्रित है। ये दोनों ग्रन्थ वैदिक और लौकिक साहित्य के सन्धि-काल में लिखे गए। इनसे संस्कृत साहित्य ही नहीं, अपितु भारतीय समाज भी प्रभावित हुआ। सामान्य भारतीय जीवन पर रामायण और महाभारत के आदर्श बहुत गहराई तक व्याप्त हैं। भारतीय समाज के विषय में कोई भी अध्ययन इन महाग्रन्थों के अनुशीलन के बिना अपूर्ण है। दोनों ग्रन्थों ने अनेक कवियों और नाटककारों को कथानक दिए हैं, इसलिए इन्हें उपजीव्य काव्य कहा जाता है।

यद्यपि दोनों ग्रन्थों का प्रभाव समान रूप से है, किन्तु अनेक दृष्टियों से ये परस्पर भिन्न हैं। रामायण को आदि-काव्य कहा जाता है, क्योंकि इसने संस्कृत में काव्यधारा का प्रवर्तन किया। इसके रचयिता वाल्मीकि आदि कवि कहे जाते हैं। दूसरी ओर महाभारत को इतिहास कहते हैं। वह विश्वकोष के समान भारतवर्ष के ज्ञान-विज्ञान के सभी पक्षों का निरूपण करता है। संपूर्ण रामायण एक ही शैली में निबद्ध है। महाभारत जीवन के प्रायः सभी पक्षों का निरूपण करता है। इसके वर्तमान स्वरूप के विकास में कई पीढ़ियों का योगदान है।

रामायण

रामायण के रचयिता वाल्मीकि ने प्रथम अलंकृत काव्य लिखकर समस्त परवर्ती भारतीय कवियों के लिए आदर्श उपस्थित किया था। कहा जाता है कि कवि वाल्मीकि के मुख से, क्रौञ्च पक्षी की हत्या होने पर, अकस्मात् करुणा से भरी वाणी फूट पड़ी :

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

तथा उसी प्रकार की वाणी में उन्होंने आदर्श पुरुष राम की कथा लिखी। रामायण में राम की कथा बहुत विस्तार से वर्णित है और जहाँ-तहाँ आवश्यकता के अनुसार इसमें कवि वाल्मीकि ने अवान्तर कथाएँ दी हैं एवं प्रकृति का व्यापक वर्णन किया है। वाल्मीकि की दृष्टि इतनी सूक्ष्म है और कल्पना-शक्ति इतनी उर्वर है कि एक-एक दृश्य को उन्होंने बहुत विस्तार प्रदान किया है।

रामायण का विभाजन सात काण्डों में हुआ है– **बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड** तथा **उत्तरकाण्ड**। प्रत्येक काण्ड को सर्गों में विभक्त किया गया है। परवर्ती संस्कृत महाकवियों ने भी रामायण के इस आदर्श पर महाकाव्यों को सर्गों में विभक्त किया। रामायण ने ही महाकाव्य के लक्षणों को स्थापित किया तथा इस आधार पर कालिदास, भारवि, माघ आदि ने महाकाव्यों की रचना की। रामायण में चौबीस हजार श्लोक हैं। रामायण की कथा बहुत लोकप्रिय है। इतिहास के विद्वानों का कहना है कि रामायण का सप्तम काण्ड परिशिष्ट के रूप में बाद में जोड़ा गया।

रामायण के अभी तीन संस्करण उपलब्ध हैं, जो भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित हैं। इनमें परस्पर पाठभेद, श्लोकों की संख्या में भेद तथा कहीं-कहीं पूरे सर्ग में भी अंतर है। ये संस्करण हैं– (1) उत्तर और दक्षिण भारत में प्रचलित लोकप्रिय संस्करण (2) बंगाल संस्करण तथा (3) उत्तर-पश्चिम भारत का संस्करण। अभी हाल में तीनों संस्करणों की समीक्षा करके बड़ौदा से रामायण का शोधपूर्ण संस्करण निकला है।

रामायण के रचनाकाल के विषय में विद्वानों ने बहुत विवेचन किया है। महाभारत से पूर्व इसकी रचना हो चुकी थी, क्योंकि महाभारत में रामायण की पूरी कथा वर्णित है और राम के जीवन से सम्बद्ध कुछ स्थलों को वहाँ तीर्थ के रूप में देखा गया है। रामायण का संकेत जैन और बौद्ध ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है। इस प्रकार रामायण की रचना पाँचवीं शताब्दी ई. पू. तक पूरी हो चुकी थी।

रामायण का सांस्कृतिक महत्त्व बहुत अधिक है। वाल्मीकि ने इस महाकाव्य के द्वारा जीवन के आदर्शभूत और शाश्वत मूल्यों का निर्देश किया है। इसमें उन्होंने राजा, प्रजा, पुत्र, माता, पत्नी, पति, सेवक आदि संबंधों का एक आदर्श स्वरूप प्रस्तुत किया है। राम का चरित्र एक आदर्श महापुरुष के रूप में है, जो सत्यवादी, दृढ़संकल्प वाले, परोपकारी, चरित्रवान्, विद्वान्, शक्तिशाली, सुन्दर, प्रजापालक तथा धीर पुरुष हैं। वाल्मीकि ने उनके गुणों को बहुत विस्तार से प्रकट किया है। इसी प्रकार सीता के आदर्श तथा गौरवपूर्ण पत्नी-रूप को भी वाल्मीकि ने स्थापित किया है। राम का भ्रातृप्रेम रामायण में अत्यंत सरल शब्दों में व्यक्त किया गया है :

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः।।

किसी भी देश में पत्नी प्राप्त की जा सकती है तथा बन्धुत्व कहीं भी स्थापित किया जा सकता है, किन्तु सहोदर भाई कहीं नहीं प्राप्त हो सकता है।

राम का चरित्र इतना उदार और ऊँचा है कि वे रावण की मृत्यु के बाद विभीषण को उसके शरीर-संस्कार का उपदेश देते हैं। वे कहते हैं– विभीषण! शत्रु की मृत्यु से वैर का अन्त हो जाता है। हमारी शत्रुता भी समाप्त हो गई। अब तो रावण का शरीर मेरे लिए भी वैसा ही है, जैसा तुम्हारे लिए–

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।।

भरत की राज्यपद के प्रति अनासक्ति, लक्ष्मण की भ्रातृ-सेवा एवं हनुमान् की स्वामिभक्ति ये तीनों जीवन के सर्वोच्च आदर्श रामायण में उपलब्ध होते हैं। काव्य का उद्देश्य है– मधुरभाव से उपदेश देना। उसमें वाल्मीकि को पूरी तरह सफलता मिली है। प्रकृति-वर्णनों में कवि वाल्मीकि तन्मय हो जाते हैं। उनकी उपमाएँ हृदय को आकृष्ट कर लेती हैं। अशोकवाटिका में शोकमग्न सीता की तुलना कवि संदेह से भरी स्मृति, अधूरी श्रद्धा, नष्ट हुई आशा, विघ्न से युक्त सिद्धि, कलुषित बुद्धि तथा नए प्रवाद के कारण नष्ट कीर्ति से करते हैं। इससे कवि हमारे हृदय में करुणा की भावना जगाते हैं।

रामायण ने न केवल संस्कृत कवियों को कथानक प्रदान किया, अपितु समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं के कवियों को भी राम-कथा लिखने की

प्रेरणा दी। इतना ही नहीं, विदेशों में भी रामायण का प्रभाव राम के आदर्श चरित्र को प्रकाशित करने वाले ग्रन्थों के रूप में पाया जाता है।

महाभारत

महाभारत संस्कृत वाङ्मय का सबसे बड़ा ग्रन्थ है, जिसमें एक लाख श्लोक हैं। इसीलिए इसे **शतसाहस्री** संहिता भी कहते हैं। महाभारत में यद्यपि कौरवों और पांडवों का इतिहास वर्णित है, किन्तु प्रासंगिक रूप से जीवन-विषयक प्राचीन भारतीय ज्ञान के सभी पक्षों का यह अद्भुत विश्वकोष है। इसका शान्तिपर्व युगों से जीवन की समस्याओं का समाधान करता आ रहा है। इस इतिहास ग्रन्थ को प्राचीन भारतीयों ने धर्म-ग्रन्थ की मान्यता दी है तथा इसे पंचम वेद कहा है। दार्शनिक समस्याओं का समाधान करने वाले विश्वप्रसिद्ध ग्रन्थ भगवद्गीता महाभारत का एक अंश है। महाभारत अपनी विशालता के अतिरिक्त संसार की सभी बातों को समाविष्ट करने के कारण महत्त्वपूर्ण है।

इसके विषय में कहा गया है कि :

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों लक्ष्यों के विषय में जो बातें इस ग्रन्थ में कही गई हैं, वे ही अन्यत्र मिलती हैं, किंतु जो इसमें नहीं हैं, वे कहीं नहीं मिलती हैं। इस उक्ति से महाभारत के विवेचनीय विषय की व्यापकता सिद्ध होती है।

रामायण के समान महाभारत भी संस्कृत कवियों के लिए कथानक की दृष्टि से उपजीव्य ग्रन्थ रहा है। इसकी मुख्य कथा के तथा उपाख्यानों के आधार पर विभिन्न कालों में संस्कृत कवियों ने काव्य, नाटक, गद्य, पद्य, चम्पू, कथा, आख्यायिका आदि अनेक प्रकार की साहित्यिक सृष्टि की है। इण्डोनेशिया, जावा, सुमात्रा आदि देशों के साहित्य में भी महाभारत विद्यमान है। वहाँ के लोग भी महाभारत के पात्रों के अभिनय से अपना मनोरंजन करने के साथ-साथ शिक्षा भी ग्रहण करते हैं।

महाभारत के प्रणेता महर्षि वेदव्यास हैं। इनका नाम कृष्णद्वैपायन भी है। महाभारत के पात्रों से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। महाभारत के आदि-पर्व में

कहा गया है कि कृष्णद्वैपायन ने तीन वर्षों तक निरन्तर परिश्रम से महाभारत की रचना की थी। इतिहास के आधुनिक विद्वानों का कहना है कि महाभारत को एक लाख श्लोकों का वर्तमान रूप अनेक शताब्दियों के विकासक्रम में प्राप्त हुआ। व्यास ने प्राचीन काल की गाथाओं को एकत्र करके इस ग्रन्थ की मूल रचना की थी। इसके विकास के तीन चरण हैं– **जय, भारत** और **महाभारत**। जय नामक ग्रन्थ में आठ हजार आठ सौ श्लोक थे। इसमें पाण्डवों की विजय का वर्णन किया गया था। दूसरे चरण में भारत नामक ग्रन्थ प्रस्तुत हुआ, जिसमें चौबीस हजार श्लोक थे। इसमें उपाख्यान नहीं थे। युद्ध का वर्णन ही प्रधान विषय था। इसी भारत को वैशम्पायन ने पढ़कर जनमेजय को सुनाया था। इस ग्रन्थ में जब उपाख्यान आदि जोड़े गए तथा इसे व्यापक विश्वकोष का स्वरूप दिया गया, तब इसका नाम महाभारत पड़ गया। ये उपाख्यान प्राचीन लोककथाओं के साहित्यिक संस्करण थे। इस स्थिति में इसमें एक लाख श्लोक हो गए। यह भारतीय धर्म और संस्कृति का विशाल भण्डार बन गया।

महाभारत के दो पाठ प्राप्त होते हैं– एक उत्तर भारत का, दूसरा दक्षिण भारत का। दोनों में श्लोक-संख्या, अध्यायों का क्रम तथा आख्यानों के स्थान को लेकर बहुत अन्तर है। महाभारत के विशुद्ध रूप को सुनिश्चित करने वाला एक संस्करण पूना से प्रकाशित हुआ है।

महाभारत का विभाजन पर्वों में हुआ है, जिनकी संख्या अठारह है– आदि, सभा, वन, विराट, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रस्थानिक तथा स्वर्गारोहण। इन पर्वों का पुनः विभाजन अध्यायों में हुआ है। इनमें कौरवों तथा पाण्डवों की उत्पत्ति से लेकर पाण्डवों के स्वर्ग में जाने तक का वर्णन है। यही महाभारत की मूल कथा है। इसमें बहुत से रोचक प्रसंगों का वर्णन किया गया है, जैसे– द्यूत-क्रीड़ा, द्रौपदी का अपमान, विराट की राजसभा में पाण्डवों का छद्म रूप से रहना, कौरवों तथा पाण्डवों का युद्ध इत्यादि।

हस्तिनापुर के सिंहासन के लिए कौरवों और पाण्डवों के संघर्ष का इसमें वर्णन है। पाण्डवों ने कौरवों से आधा राज्य प्राप्त कर राजसूय यज्ञ किया, किन्तु ईर्ष्यालु कौरव पाण्डवों को जुए में हरा कर उन्हें शर्त के अनुसार तेरह वर्षों के लिए वन जाने को विवश कर देते हैं। अन्तिम वर्ष में अज्ञातवास की यह शर्त रखी जाती है कि यदि इस अवधि में पाण्डवों का पता चल गया,

तो उन्हें पुनः वनवास में जाना पड़ेगा। पाण्डव सफलतापूर्वक यह शर्त पूरी कर लेते हैं और अपना राज्य माँगते हैं। किन्तु उन्हें राज्य नहीं दिया जाता है। इसीलिए महाभारत का युद्ध होता है जो अठारह दिनों तक चलता है। इसमें कौरवों का सर्वनाश हो जाता है। युद्ध के आरम्भ में विषादग्रस्त अर्जुन को युद्ध के लिए कृष्ण प्रेरित करते हैं और गीता का अमूल्य उपदेश देते हैं। कर्म की प्रेरणा देने वाला भगवद्गीता नामक यह ग्रन्थ इतना महत्त्वपूर्ण है कि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक देश-विदेश के दार्शनिकों को प्रभावित करता रहा है।

महाभारत का रचनाकाल चौथी शताब्दी ई. पू. माना जाता है। कुछ लोगों के अनुसार महाभारत का युद्ध कलियुग के आरम्भ में 3102 ई. पू. में हुआ था। यह तिथि ज्यौतिष की गणना से निकाली गई है। इस ग्रन्थ का उल्लेख आश्वलायन गृह्यसूत्र (400 ई. पू.) में पहली बार आया है। प्रथम शताब्दी ईस्वी में इसका प्रचार दक्षिण भारत में हो गया था।

महाभारत का महत्त्व सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत अधिक है। यह अपने आप में संपूर्ण साहित्य है। इसके शान्तिपर्व में राजनीति के विषयों का विशद एवं गम्भीर प्रतिपादन है। इसके पात्रों को व्यास ने उपदेश का आधार बनाया है, जिससे लोग कर्तव्य की शिक्षा ले सकें। यह एक ऐसा धार्मिक ग्रन्थ है, जिसमें प्रत्येक श्रेणी का मनुष्य अपने जीवन के उत्थान की सामग्री प्राप्त कर सकता है। बाणभट्ट ने व्यास को कवियों का निर्माता कहा है, क्योंकि महाभारत से कवियों को काव्य-सृष्टि के लिए प्रेरणा मिलती रही है। गीता में कर्म, ज्ञान और भक्ति का सुन्दर समन्वय है। महाभारत में व्यास ने कहा है कि धर्म शाश्वत है। अतः इसका परित्याग किसी भी दशा में भय या लोभ से नहीं करना चाहिए। शान्ति पर्व में कहा गया है कि राजधर्म के बिगड़ने पर राज्य तथा समाज का सर्वनाश हो जाता है। मानव जीवन को धर्म, अर्थ और काम के द्वारा मोक्ष की ओर ले जाने की प्रक्रिया महाभारत में अच्छी तरह बताई गई है। इसलिए धर्म, राजनीति, दर्शन आदि सभी विषयों का यह अक्षय कोश है।

गीता

महाभारत के शान्तिपर्व के अन्तर्गत 18 अध्यायों तथा 700 श्लोकों में व्याप्त गीता एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में विश्वविख्यात है। युद्ध के आरम्भ में युद्ध

के भयावह परिणाम की कल्पना करके अर्जुन विषादग्रस्त हो जाते हैं, तब उन्हें कर्म के लिए प्रेरित करते हुए कृष्ण उपदेश देते हैं। भगवान् कृष्ण के द्वारा उपदिष्ट होने से इसे **भगवद्-गीता** भी कहते हैं। यद्यपि अर्जुन को युद्ध के लिए प्रवृत्त करने का उद्देश्य दो-तीन अध्यायों में ही पूरा हो गया था, किन्तु जीवन की व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक समस्याओं को सुलझाने के लिए अर्जुन के प्रासंगिक प्रश्नों का उत्तर देने के कारण गीता का आकार बड़ा हो गया।

गीता के अध्यायों को **योग** कहा गया है। गीता में योग का अर्थ है सम-दृष्टि **(समत्वं योग उच्यते)** अथवा कुशलता पूर्वक कर्म करना **(योगः कर्मसु कौशलम्)** जिससे बन्धन न हो। गीता में मुख्य रूप से तीन योगों का प्रतिपादन किया गया है– **कर्मयोग**, **ज्ञानयोग** तथा **भक्तियोग**। ये तीनों परस्पर सम्बद्ध तथा पूरक हैं।

कर्मयोग का अर्थ है अपने निर्धारित कर्तव्यों का निष्पादन भौतिक लाभ की आशा रखे बिना करना। इसे 'निष्काम कर्म' भी कहा गया है। कामना से कर्म में आसक्ति होती है, जिससे बन्धन की उत्पत्ति होती है। कृष्ण कहते हैं– **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन** (तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है, फल पाने में नहीं।) फल देने वाला कोई ऊपरी तत्त्व है, जिस पर मानव का नियन्त्रण नहीं है।

ज्ञानयोग इसी की सिद्धि करता है। सर्वोपरि ज्ञान यह है कि विश्व पर नियन्त्रण करने वाला परमात्मा (पुरुषोत्तम) है– **वासुदेवः सर्वम्।** यह ज्ञान हो जाने पर ही निष्काम कर्म संभव है, अन्यथा मनुष्य को स्वार्थ (सकाम कर्म) से पृथक् नहीं किया जा सकता। कर्म, कर्मफल, प्रकृति आदि सब कुछ पुरुषोत्तम से नियन्त्रित होकर चल रहा है।

भक्तियोग परमात्मा को ही सर्वस्वसमर्पण का नाम है। इसे योग-दर्शन में 'ईश्वर-प्रणिधान' कहते हैं। अपने सभी कर्मों को ईश्वरार्पण की दृष्टि से करें, तो मानव कभी असत्कर्म नहीं कर सकता। गीता का वाक्य है– **तत्कुरुष्व मदर्पणम्।**

भगवद्गीता पर संस्कृत में अनेक टीकाएँ लिखी गई हैं। आज विश्व की प्रायः सभी भाषाओं में इसके अनुवाद, टीका, विवेचन, निबन्ध, भाष्य आदि लिखे गए हैं। यह संसार की सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थों में अन्यतम है।

पुराण

जिस प्रकार वैदिक धर्म का आधार वेद है, उसी प्रकार उत्तरकालीन हिंदू धर्म (वैष्णव, शैव आदि) का आधार पुराण है। पुराण का अर्थ प्राचीन वर्णन या आख्यान है। पुराणों में वैदिक गाथाओं का व्याख्यान किया गया है। प्राचीन घटनाओं के विस्तृत वर्णन पुराण के नाम से विख्यात हुए। पुराणों ने अपना स्वरूप तीसरी शताब्दी ई. पू. में ही लेना आरंभ कर दिया था।

पुराणों का वर्ण्य विषय अत्यंत व्यापक है। प्राचीन घटनाओं तथा अन्य विभिन्न विषयों का इनमें अतिशयोक्तिपूर्ण तथा कल्पना से भरपूर वर्णन है। ये आलंकारिक शैली में किन्तु सरल संस्कृत भाषा में लिखे गए हैं। पुराणों में प्रायः अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया गया है, किन्तु कुछ पुराणों में गद्य का भी प्रयोग है। महाभारत के समान पुराणों में भी अनेक विषयों का विभिन्न प्रकार से वर्णन है, जिससे इनका स्वरूप भी विश्वकोष के समान हो गया है।

पुराणों में सामान्यतः पाँच विषयों का वर्णन मिलता है– 1. संसार की सृष्टि 2. प्रलय के बाद पुनः सृष्टि 3. राजाओं और ऋषियों के वंशों का वर्णन 4. संसार का कालविभाग और प्रत्येक काल की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन 5. कलियुग के प्रतापी राजाओं के कार्यों का वर्णनः

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

यह विषयवस्तु सभी पुराणों में प्राप्त नहीं होती है। इनके अतिरिक्त वर्णाश्रम-धर्म, कर्मकाण्ड, भूगोल-वर्णन, व्रत, तीर्थ, नदी, देवता इत्यादि के माहात्म्य का वर्णन भी कई पुराणों में मिलता है। इन वर्णनों में अतिशयोक्तियों की भरमार है, जिससे वास्तविक तथ्य छिप से गए हैं। पुराणों की शैली इतनी लोकप्रिय हुई कि ब्राह्मण धर्म के अतिरिक्त जैन और बौद्ध धर्म के अनुयायियों ने भी इस शैली में रुचि ली और अपने पुराणों का विकास किया।

सामान्य रूप से सभी पुराणों का रचयिता व्यास को माना गया है, किन्तु अपनी शैली तथा विषयवस्तु के कारण इनकी रचना विभिन्न युगों में होती रही है। अधिकांश पुराण गुप्तकाल में संकलित हुए, जबकि वर्णाश्रम-धर्म पूर्ण उत्कर्ष पर था।

पुराणों की संख्या अठारह है। इसके अतिरिक्त अठारह उपपुराण भी हैं। पुराणों को विषयवस्तु तथा देवता के आधार पर तीन भागों में बाँटा गया है।

तदनुसार ब्रह्मा, विष्णु और शिव से संबद्ध छह-छह पुराण हैं। इनका वर्गीकरण सत्त्व, रजस् एवं तमस्– इन तीन गुणों के आधार पर किया जाता है। ये क्रमशः इस प्रकार हैं–

1. विष्णु से सम्बद्ध (सात्त्विक) पुराण : विष्णु, भागवत, नारद, गरुड़, पद्म और वराह।
2. ब्रह्मा से सम्बद्ध (राजस) पुराण : ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य और वामन।
3. शिव से सम्बद्ध (तामस) पुराण : शिव, लिंग, स्कंद, अग्नि, मत्स्य और कूर्म।

उपपुराणों के नामों के विषय में मतभेद है। कुछ मुख्य उपपुराण हैं– नृसिंह, नारद, कालिका, साम्ब, पराशर, सूर्य इत्यादि। रामायण और महाभारत के समान पुराण भी परवर्ती कवियों के लिए प्रेरणास्रोत रहे हैं।

पुराणों का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व बहुत अधिक है। प्राचीन भारत के राजनैतिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक ज्ञान के लिए पुराण एकमात्र आधार हैं। कल्पना और अलंकृत वर्णनों की गहराई में जाकर देखें तो प्राचीन भारत का इतिहास इनमें स्पष्ट झलकता है। पार्जिटर नामक विदेशी विद्वान् ने पुराणों के गंभीर अनुशीलन से भारतीय राजाओं की वंशावलियाँ प्रस्तुत की थीं, जिनसे उसका ऐतिहासिक महत्त्व सूचित होता है। प्राचीन भारत का व्यापक सांस्कृतिक चित्र इन पुराणों में मिलता है। भारतीय जनमानस के धार्मिक विश्वासों की जड़ में ये पुराण ही हैं। शिव, विष्णु, गणेश, दुर्गा आदि विविध देवताओं की उपासना का आधार ये पुराण ही हैं। व्रतों और पूजा-पाठ का महत्त्व इन पुराणों में यथास्थान बताया गया है। पुराणों में आख्यानों के द्वारा सामान्य जनता को आचार-विचार की बहुत बड़ी शिक्षा दी गई है। स्वर्ग और नरक के वर्णन से जनता को सही कार्य करने और गलत कार्यों से बचने की शिक्षा देना पुराणों का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

विभिन्न तीर्थों का महत्त्व बतलाकर तीर्थयात्रा के प्रति सामान्य जनता को प्रेरित करके राष्ट्रीय एकता के निर्माण में भी पुराणों की समर्थ भूमिका है। पुराणों ने संपूर्ण देश को अखण्ड माना है। विभिन्न सम्प्रदायों को समन्वित करने का प्रयास भी पुराणों ने किया है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि पुराणकारों ने सामान्य जनता के लिए ज्ञान-विज्ञान की पूरी सामग्री संकलित

कर तथा पुराणों के पाठ और श्रवण का महत्त्व बताकर अनौपचारिक शिक्षा की दृढ़ व्यवस्था की है।

सारांश

रामायण और महाभारत वैदिक और लौकिक संस्कृत साहित्य के सन्धिकाल में लिखे गए दो महाग्रन्थ हैं। इन दोनों ग्रन्थों ने भारतीय संस्कृति को बहुत प्रभावित किया है और बाद के विभिन्न कवियों ने इनकी कथा को आश्रय बनाकर अपने ग्रन्थों की रचना की है।

- ***रामायण** : रामायण आदिकाव्य है। इसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि हैं। इसमें रामकथा वर्णित है। इसका विभाजन सात काण्डों में हुआ है– बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड। प्रत्येक काण्ड विभिन्न सर्गों में विभक्त है। रामायण में चौबीस हजार श्लोक हैं।*
- ***महाभारत** : कौरव-पाण्डवों की उत्पत्ति से लेकर पाण्डवों के स्वर्ग-गमन तक की कथा महाभारत में वर्णित है। इसमें एक लाख श्लोक हैं, जिसके कारण इसको शतसाहस्रीसंहिता भी कहते हैं। इसे पंचम वेद भी कहा गया है। इसके रचयिता महर्षि वेदव्यास हैं। श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत का ही एक अंश है।*

  महाभारत 18 पर्वों में विभक्त है। इसके विकास के तीन रूप हैं– जय, भारत और महाभारत। महाभारत के रचनाकाल के विषय में मतभेद है, परन्तु सामान्यतः इसका समय चौथी शताब्दी ई. पू. माना जाता है। यह धर्म, राजनीति, दर्शन आदि सभी विषयों का अक्षय कोश है।
- ***गीता** : महाभारत के शान्ति पर्व में अठारह अध्यायों तथा 700 श्लोकों में व्याप्त गीता एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध है। इसमें कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग का वर्णन है। यह बहुत लोकप्रिय पुस्तक है। इसके अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में हुए हैं।*
- ***पुराण** : पुराण का अर्थ प्राचीन वर्णन और आख्यान है। पुराणों में वैदिक प्रतीक तथा प्राचीन घटनाओं के वर्णन मिलते हैं। सामान्य रूप से सभी पुराणों का रचयिता महर्षि व्यास को माना गया है।*

  पुराणों ने अपना स्वरूप तीसरी शताब्दी ई. पू. में ही प्राप्त कर लिया था। 18 पुराण तथा 18 उपपुराण हैं। 18 पुराण इस प्रकार हैं :

  मत्स्य, मार्कण्डेय, भागवत, भविष्य, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, वायु, वामन, वराह, विष्णु, अग्नि, नारद, पद्म, लिङ्ग, गरुड़, कूर्म और स्कन्द। सामान्य रूप से पुराणों के पाँच विषय माने जाते हैं :

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

पुराणों में प्रायः अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया गया है। कुछ पुराणों में गद्य का भी प्रयोग हुआ है।

पुराणों का ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक महत्त्व बहुत अधिक है। राष्ट्रीय एकता के निर्माण में भी पुराणों का योगदान है।

अभ्यास-प्रश्न

1. उपजीव्य काव्य किसे कहते हैं?
2. रामायण और महाभारत किन दृष्टियों से भिन्न हैं?
3. रामायण के रचयिता कौन हैं?
4. अभी रामायण के कौन-कौन से संस्करण उपलब्ध हैं?
5. रामायण की रचना का काल किस शताब्दी में माना जाता है?
6. रामायण में कितने काण्ड हैं? प्रत्येक का नाम लिखिए।
7. रामायण में कितने श्लोक हैं?
8. वाल्मीकि ने रामायण में जीवन के किन आदर्शों को प्रस्तुत किया है?
9. महाभारत को शतसाहस्रीसंहिता क्यों कहते हैं?
10. कौन-सा विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रन्थ महाभारत का अंश है?
11. महाभारत के लेखक कौन हैं?
12. महर्षि व्यास का दूसरा नाम क्या है?
13. महाभारत के विकास में मुख्यतः कौन-कौन से रूप माने गए हैं?
14. महाभारत कितने पर्वों में बँटा हुआ है?
15. शान्तिपर्व में मुख्य रूप से किन बातों का वर्णन हुआ है?
16. पुराणों का रचयिता किसे माना गया है?
17. पुराणों में मुख्यतः किस छन्द का प्रयोग हुआ है?
18. पुराणों की संख्या और उनके नाम लिखिए।
19. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–
    (क) पुराणों का वर्गीकरण सत्त्व .... और .... इन तीन गुणों के आधार पर किया गया है।
    (ख) पुराणों में आख्यानों के द्वारा सामान्य जनता को .... की शिक्षा मिलती है।

(ग) महाभारत में .... और ....
के युद्ध का वर्णन है।

(घ) गीता .... की प्रेरणा देने वाला ग्रन्थ है।

(ङ) पुराण का अर्थ ....वर्णन या आख्यान है।

चतुर्थ अध्याय

महाकाव्य

लौकिक संस्कृत भाषा में काव्य-रचना का आरंभ वाल्मीकि से हुआ। वाल्मीकि को मधुर उक्तियों का मार्गदर्शी महर्षि कहा गया है। किसी विषय का अलंकृत वर्णन कैसे हो, उसमें सरलता किस प्रकार आए और छोटे-छोटे मनोरम पदों से आकर्षक अर्थों की.अभिव्यक्ति कैसे हो, इसकी रीति वाल्मीकि ने ही दिखाई। उन्होंने राम को नायक बनाकर आदि-काव्य प्रस्तुत किया। वाल्मीकि ने जो काव्यपद्धति आरम्भ की थी, उसे कुछ काल तक सर्गबंध रचना कहा जाता रहा। बाद में इसे महाकाव्य कहा गया। संस्कृत भाषा में वाल्मीकि के अनुकरण पर कई महाकाव्य लिखे जा चुके, तब इसके लक्षण का निरूपण काव्य-शास्त्रियों ने किया। भामह, दण्डी आदि आचार्यों ने महाकाव्य का जो लक्षण निश्चित किया है, वह इस प्रकार है–

महाकाव्य सर्गों में बँधा होता है। इसका नायक कोई देवता या उदात्त गुणों से युक्त उच्च कुल में उत्पन्न क्षत्रिय होता है। कभी-कभी एक ही वंश में उत्पन्न अनेक राजा भी इसके नायक हो सकते हैं, जैसा कि कालिदास के रघुवंश में है। महाकाव्य में शृङ्गार, वीर और शांत इन तीन रसों में से कोई एक प्रधान रस होता है। अन्य रस भी सहायक के रूप में आते हैं। नाटक में जिस प्रकार कथावस्तु का सन्धियों में विकास होता है, उसी प्रकार महाकाव्य में भी कथानक का विकास होना चाहिए। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से कोई एक फल महाकाव्य के उद्देश्य के रूप में होता है। इसके आरम्भ में नमस्कार, आशीर्वचन अथवा मुख्य कथा का सूचक मंगलाचरण होता है। इसमें कहीं दुष्टों की निन्दा और कहीं सज्जनों की प्रशंसा होती है।

महाकाव्य में सर्गों की संख्या आठ से अधिक होनी चाहिए। ये सर्ग न तो आकार में बहुत बड़े हों और न बहुत छोटे। एक सर्ग में प्रायः एक ही छन्द

का प्रयोग होता है। उसके अन्त में छन्द का परिवर्तन किया जाता है। सर्ग के अंत में भावी कथा की सूचना दी जाती है। महाकाव्य में सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रभात, आखेट, ऋतु, पर्वत, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, राजा, यज्ञ, युद्ध, यात्रा, विवाह, मन्त्रणा आदि का अवसर के अनुकूल वर्णन होता है। महाकाव्य का नामकरण कवि, कथानक, नायक आदि के आधार पर होता है।

संस्कृत महाकाव्यों के विकास-क्रम में क्रमशः कालिदास, अश्वघोष, भारवि, भट्टि, माघ, कुमारदास तथा श्रीहर्ष के नाम मुख्य रूप से लिए जाते हैं। इनकी रचनाएँ महाकाव्य-साहित्य में अमर हैं। इनका विवरण निम्नलिखित है–

कालिदास

संस्कृत कवियों में कालिदास श्रेष्ठ हैं। इन्हें परवर्ती कवियों ने कविकुल-गुरु की उपाधि दी है। उन्होंने दो महाकाव्य (**कुमारसम्भव** तथा **रघुवंश**), दो खण्डकाव्य (**ऋतुसंहार तथा मेघदूत**) और तीन नाटक (**विक्रमोर्वशीय**, **मालविकाग्निमित्र** तथा **अभिज्ञानशाकुन्तल**) लिखे हैं।

दुर्भाग्यवश कालिदास का काल निश्चित नहीं है। कुछ लोग इनका काल प्रथम शताब्दी ई. पू. में मानते हैं, तो दूसरे लोग इन्हें गुप्तवंश के चंद्रगुप्त द्वितीय का समकालिक सिद्ध करते हैं। कालिदास ने वाल्मीकि की शैली को अपने काव्यों में स्वीकार किया है। दूसरी ओर इनकी शैली का प्रभाव अश्वघोष के काव्यों पर लक्षित होता है।

- **कुमारसम्भव** : यह कालिदास का प्रथम महाकाव्य है। कालिदास ने इसे आठ सर्गों में लिखा था। बाद में किसी कवि ने इसमें नौ अतिरिक्त सर्ग जोड़ दिए। कुछ विद्वानों की धारणा है कि संपूर्ण उपलब्ध कुमारसम्भव कालिदास की ही रचना है। इस महाकाव्य में शिव-पार्वती के विवाह तथा कुमार कार्तिकेय के जन्म की कथा है। इसके प्रथम सर्ग में हिमालय का सुरम्य वर्णन है। शिव के द्वारा पार्वती के प्रेम की परीक्षा का वर्णन इसके पंचम सर्ग में बहुत रोचक ढंग से किया गया है। पार्वती की तपस्या के समय में शिव ब्रह्मचारी बनकर आते हैं और शिव की निन्दा करते हैं। पार्वती शिव के पक्ष में बोलती हैं। इसके अष्टम सर्ग में इनके गृहस्थ जीवन के प्रेम का वर्णन है। इस महाकाव्य में कालिदास का शृङ्गार के प्रति आकर्षण प्रकट होता है।

- **रघुवंश** : कालिदास का दूसरा महाकाव्य रघुवंश है। परंपरा ने इसे श्रेष्ठ महाकाव्य माना है। इस काव्य में कवि ने इक्ष्वाकुवंश के विभिन्न राजाओं का वर्णन किया है, जिनमें दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम और कुश का विस्तृत वर्णन है। इनके पराक्रमों को कालिदास ने उदात्त रूप में प्रकट किया है। इस महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में दिलीप की गो-सेवा, चतुर्थ सर्ग में रघु की दिग्विजय यात्रा, षष्ठ सर्ग में इन्दुमती का स्वयंवर एवं त्रयोदश सर्ग में राम का अयोध्या लौटना– ये रघुवंश के उत्तम स्थल है। रघुवंश के अन्तिम (उन्नीसवें) सर्ग में राजा अग्निवर्ण के विलासमय जीवन का चित्र खींचा गया है और रघुकुल का पतन दिखाया गया है।

  कुमारसम्भव गृहस्थ जीवन का समर्थन करता है और रघुवंशी राजाओं के उच्च आदर्श का प्रतिपादक है। इन दोनों महाकाव्यों में कालिदास ने वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है और उनमें सभी रसों को प्रकाशित करने की क्षमता वाला प्रसाद गुण भरा हुआ है।

अश्वघोष

अश्वघोष के दो महाकाव्य हैं **बुद्धचरित** और **सौन्दरनन्द**। इनका समय प्रथम शताब्दी ई. है। ये कुषाणवंश के राजा कनिष्क के समकालिक थे। अश्वघोष मूलतः अयोध्या के रहने वाले ब्राह्मण थे, जो बाद में बौद्ध बन गए थे। ये बहुत बड़े आचार्य और वक्ता थे। इन्होंने इन दो महाकाव्यों के अतिरिक्त एक नाटक (शारिपुत्र-प्रकरण) भी लिखा था, जो खण्डित रूप में मध्य एशिया से प्राप्त हुआ है।

- **बुद्धचरित** : यह भगवान बुद्ध के जीवन और उपदेशों का वर्णन करता है। इसमें मूलतः अट्ठाईस सर्ग थे, किन्तु आज उसके प्रथम चौदह सर्ग ही उपलब्ध हैं। वैसे पूरे महाकाव्य के तिब्बती और चीनी भाषा में अनुवाद हो चुके थे, जो उपलब्ध हैं। बुद्धचरित पर रामायण का बहुत अधिक प्रभाव है। इसके कई दृश्य रामायण से समता रखते हैं। घटनाओं का चयन तथा आयोजन करने में अश्वघोष अधिक प्रभाव डालते हैं। बौद्ध होते हुए भी प्राचीन वैदिक परम्पराओं के प्रति उनमें गहन निष्ठा है। बुद्धचरित के पूर्वार्द्ध में बुद्ध के निर्वाण तक का वर्णन है। शेष भाग में उनके उपदेशों तथा उत्तरकालिक जीवन का वर्णन है।

- **सौन्दरनन्द** : इनका यह दूसरा महाकाव्य है, जिसमें अठारह सर्ग हैं। इसमें बुद्ध के सौतेले भाई नन्द की धर्मदीक्षा का वर्णन है। इस महाकाव्य के आरम्भिक भाग में कवि ने नन्द और उसकी पत्नी सुंदरी का परस्पर अनुराग शृङ्गारपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है।

  जब नन्द बुद्ध के विहार में चला जाता है, तब दोनों की विरह-व्यथा का पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है। नन्द के मानसिक संघर्ष का चित्रण करने में कवि ने पूर्ण सफलता पाई है। बौद्ध धर्म के उपदेशों का अत्यन्त रोचक उपमाओं के द्वारा इसमें प्रतिपादन किया गया है। जो नन्द काम में आसक्त था, वही धर्मोपदेशक बन जाता है। अश्वघोष के दोनों महाकाव्य वैदर्भी रीति में लिखे गए हैं। उनमें अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से है। अश्वघोष ने बौद्धधर्म के उपदेशों को काव्य का रूप देकर प्रस्तुत किया है, जिससे लोग संन्यास-धर्म के प्रति प्रवृत्त हों। भोग के प्रति आसक्ति की व्यर्थता और संसार की असारता दिखाने में कवि को पूरी सफलता मिली है।

भारवि

भारवि ने संस्कृत महाकाव्य को एक नई दिशा दी। इनके पहले के कवि कथावस्तु के विकास पर अधिक ध्यान देते थे, वर्णनों पर कम। भारवि ने कथानक से अधिक वर्णनों को महत्त्व दिया। महाकाव्य की इस पद्धति को अलंकृत पद्धति या विचित्र मार्ग कहा गया है।

भारवि का काल 500 ई. से 600 ई. के बीच माना गया है। ऐहोल अभिलेख (634 ई.) में भारवि का नाम कालिदास के साथ लिया गया है। उस समय तक ये प्रसिद्ध कवि हो गए थे।

- **किरातार्जुनीय** : यह भारवि की एकमात्र रचना है। इसमें 18 सर्ग हैं। इन्द्रकील पर्वत पर दिव्य अस्त्र प्राप्त करने के लिए तपस्या करने वाले अर्जुन और किरातवेशधारी भगवान् शंकर का युद्ध इस काव्य में मुख्य रूप से वर्णित है। भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर अर्जुन को दिव्य अस्त्र प्रदान किया। इसका कथानक बहुत छोटा है, किन्तु भारवि ने वर्णनों से इस महाकाव्य को विस्तार प्रदान किया है। चतुर्थ से एकादश सर्ग तक कवि ने ऋतु, पर्वत, क्रीड़ा, सूर्योदय, सूर्यास्त आदि का विस्तृत वर्णन किया है, जिसमें अलंकरण और कल्पना का आधिक्य है तथा स्वाभाविकता

का अभाव है। भारवि का अर्थ-गौरव प्रसिद्ध है। इनके श्लोकों में बहुत से ऐसे अंश हैं, जो नीति-वाक्य या लोकोक्ति के रूप में प्रचलित हैं, जैसे– **हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः** (ऐसी बातें दुर्लभ होती हैं, जो हितकर भी हों और मनोहर भी।), **सहसा विदधीत न क्रियाम्** (कोई कार्य सहसा नहीं करना चाहिए) इत्यादि। भारवि ने चित्र-काव्य का पर्याप्त प्रयोग किया है। कहीं एक ही व्यञ्जन से बना श्लोक है, तो कहीं दो व्यञ्जनों से। इस रचना में भारवि ने पांडित्य का प्रदर्शन किया है। इसलिए भारवि की कविता को नारियल के फल के समान कहा गया है, जो ऊपर से रूक्ष है, किन्तु भीतर से सरस है।

भट्टि

रावणवध या **भट्टिकाव्य :** भट्टि का एकमात्र महाकाव्य है, जो **भट्टिकाव्य** भी कहलाता है। इसकी विशेषता सरलता से व्याकरण सिखाने में है। व्याकरण के प्रयोगों का सर्वाधिक उपयोग भट्टि ने ही किया है। भट्टि ने स्वयं कहा है कि उन्होंने वलभी नगरी में श्रीधरसेन नामक राजा के संरक्षण में यह काव्य लिखा था। श्रीधरसेन नाम के चार राजा 500 ई. से 650 ई. के बीच हुए। अतः भट्टि का समय अधिक से अधिक 650 ई. तक हो सकता है। सामान्यतः विद्वानों ने इनका समय छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं सातवीं शताब्दी के आरंभ में माना है।

रावणवध या भट्टिकाव्य बाईस सर्गों में समाप्त हुआ है। इनमें रामायण की कथा सरल तथा संक्षिप्त रूप में वर्णित है। मनोरञ्जन के साथ संस्कृत व्याकरण का पूर्ण ज्ञान देना इस महाकाव्य का उद्देश्य है। भट्टि ने कहा है कि व्याकरण की आँख रखने वालों के लिए यह दीपक के समान अन्य शब्दों को भी प्रकाशित करेगा, किन्तु व्याकरण न जानने वाले व्यक्तियों के लिए यह वैसा ही है जैसे अन्धों के लिए दर्पण। व्याकरण के अतिरिक्त अलंकारशास्त्र के ज्ञान का भी प्रदर्शन भट्टि ने इस महाकाव्य में किया है। भट्टि स्वयं इस काव्य को व्याख्या द्वारा समझने का सुझाव देते हैं।

कुमारदास

- **जानकीहरण** : कुमारदास द्वारा बीस सर्गों में रचित राम की कथा पर आश्रित महाकाव्य है। कुछ लोग कुमारदास को सिंहल देश का राजा

मानते हैं। कालिदास के रघुवंश का अनुकरण इन्होंने अपने महाकाव्य में किया है। राजशेखर ने इनकी प्रशंसा में कहा है–

जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमः।।

रघुवंश (इस नाम का महाकाव्य, रघुवंशी राजा) के रहते हुए जानकीहरण (इस नाम का महाकाव्य, सीताहरण) करने की क्षमता यदि किसी में है, तो वह कुमारदास में है या रावण में।

कुमारदास का समय छठी शताब्दी माना जाता है, यद्यपि कुछ लोग इन्हें आठवीं शताब्दी का भी मानते हैं। जानकीहरण महाकाव्य अपने शीर्षक से केवल सीताहरण से सम्बद्ध प्रतीत होता है, किन्तु इसमें राम के जन्म से लेकर अभिषेक तक की पूरी कथा है।

माघ

माघ राजस्थान के भीनमाल या श्रीमाल नगर के निवासी थे। इनके पितामह वहाँ के राजा के प्रधानमंत्री थे। इनका समय 700 ई. माना जाता है। माघ की एकमात्र रचना **शिशुपालवध** महाकाव्य है। माघ इस काव्य की रचना में भारवि और भट्टि से बहुत प्रभावित हैं। भारवि की प्रतिस्पर्धा तो उनके महाकाव्य में आद्यन्त दिखाई पड़ती है। भारवि शिव का यशोगान करते हैं, तो माघ विष्णु का। माघ ने भारवि को निस्तेज करने का बहुत प्रयास किया है।

शिशुपालवध

शिशुपालवध में कृष्ण के द्वारा शिशुपाल के वध की कथा है। छोटे कथानक को माघ ने महाकाव्य में विहित वर्णनों से बहुत बड़ा बना दिया है। व्याकरण, राजनीति, वेद, दर्शन, संगीत आदि विविध शास्त्रों के अपने ज्ञान को माघ ने इसमें प्रदर्शित किया है। इस महाकाव्य को लिखने में माघ का ऐसा उद्देश्य प्रतीत होता है कि महाकाव्य के छोटे से छोटे लक्षण को समाविष्ट करके इसे आदर्श महाकाव्य का रूप दिया जा सके। भाषा और छंद दोनों पर माघ का अद्भुत अधिकार है। भारवि के समान इन्होंने चित्रकाव्य का भी प्रयोग किया है। इस महाकाव्य में बीस सर्ग हैं। माघकाव्य को पण्डितों के समाज में बहुत प्रशंसा मिली है।

श्रीहर्ष

यद्यपि माघ के बाद अन्य अनेक कवि हुए किन्तु श्रीहर्ष को जो ख्याति मिली, वह अन्य किसी को नहीं। श्रीहर्ष विशिष्ट पण्डित-परंपरा में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने **नैषधीयचरित** महाकाव्य के अतिरिक्त वेदान्त का एक क्लिष्ट ग्रंथ **खण्डनखण्डखाद्य** भी लिखा था। इनकी शैली पाण्डित्य से भरी हुई है। माघ के समान श्रीहर्ष भी पाण्डित्य-प्रदर्शन करते हैं, किन्तु पदों का लालित्य भी सर्वत्र बनाए रखते हैं।

श्रीहर्ष का समय 12वीं शताब्दी है। ये कान्यकुब्ज-नरेश जयचन्द्र की सभा में रहते थे। जयचन्द्र काशी में रहकर ही अपने साम्राज्य पर शासन करते थे। किन्तु कान्यकुब्ज-नरेश कहे जाते थे। श्रीहर्ष ने अनेक ग्रन्थ लिखे जिनकी सूचना उन्होंने नैषधीयचरित के सर्गों के अन्त में दी है।

नैषधीयचरित में निषध देश के राजा नल के जीवन का वर्णन है। नल और दमयन्ती के परस्पर प्रेम तथा विवाह की संक्षिप्त कथा को कल्पना-शक्ति के सहारे श्रीहर्ष ने 22 सर्गों में फैलाया है। उनके प्रेम में हंस तथा देवता बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं। नैषधीयचरित में श्रीहर्ष ने अपने प्रौढ़ पाण्डित्य का इतना अधिक प्रदर्शन किया है कि यह शास्त्र-काव्य बन गया है। साधारण संस्कृतज्ञ इसके साथ खिलवाड़ नहीं कर सकते। विद्वानों के गर्व को दूर करने के लिए यह औषध माना गया है (**नैषधं विद्वदौषधम्**)। इस महाकाव्य को भारवि और माघ के काव्यों से भी उत्कृष्ट कहा गया है–

तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः।।

अर्थात् भारवि की शोभा तभी तक है, जब तक माघ का उदय नहीं हुआ और जब नैषध काव्य का उदय हो गया, तो कहाँ माघ और कहाँ भारवि।

भारवि, माघ और श्रीहर्ष इन तीनों के महाकाव्यों को संस्कृत विद्वान् **बृहत्त्रयी** कहते हैं। इन तीनों ने अलङ्कृत पद्धति का अनुसरण किया है। कालिदास के तीन काव्यों (रघुवंश, कुमारसंभव और मेघदूत) को सरल शैली का आश्रय लेने के कारण **लघुत्रयी** कहा जाता है। इन छह काव्यों का संस्कृत परम्परा में विशेष रूप से प्रचार है।

अन्य महाकाव्य

संस्कृत भाषा में महाकाव्य-रचना बहुत लोकप्रिय रही है। उपर्युक्त महाकाव्यों के अतिरिक्त प्राचीन काल में भी अनेक महाकाव्य लिखे गए थे और यह

परम्परा आज तक चली आ रही है। यहाँ कुछ महाकाव्यों के नाम दिए जाते हैं। हरविजय नामक महाकाव्य कश्मीरी कवि रत्नाकर द्वारा लिखा गया, जिसका समय 850 ई. माना जाता है। इस महाकाव्य में भगवान् शिव की अन्धकासुर पर विजय का विस्तार से वर्णन है। इसमें 50 सर्ग हैं। महाकाव्य की विशालता के कारण रत्नाकर की कीर्ति बहुत फैल गई। रत्नाकर के समकालिक शिवस्वामी ने बौद्धग्रन्थ अवदानशतक की एक कथा पर आश्रित कप्फणाभ्युदय नामक महाकाव्य लिखा। यह 20 सर्गों का बौद्ध महाकाव्य है। कश्मीर के ही निवासी क्षेमेन्द्र ने तीन प्रसिद्ध ग्रन्थों को महाकाव्य के रूप में ढाला। ये हैं– रामायणमञ्जरी, भारतमञ्जरी और बृहत्कथामञ्जरी। ये तीनों प्रसिद्ध कथाओं पर आश्रित हैं। क्षेमेन्द्र ने 1067 ई. में अपना अन्तिम महाकाव्य दशावतारचरित लिखा। क्षेमेन्द्र का जीवनकाल 995 ई. से 1070 ई. तक है।

एक अन्य कश्मीरी कवि मङ्ख ने श्रीकण्ठचरित नामक महाकाव्य 25 सर्गों में लिखा, जिसमें शिव द्वारा त्रिपुर की पराजय का वर्णन है। इनका समय 12वीं शताब्दी ई. है। अन्य प्रदेशों के कवियों ने भी समय-समय पर महाकाव्यों की रचना की। नीलकण्ठ दीक्षित ने 17वीं शताब्दी में शिवलीलार्णव महाकाव्य 12 सर्गों में लिखा। रामभद्र दीक्षित का पतञ्जलिचरित (आठसर्ग), वेङ्कटनाथ का यादवाभ्युदय, धनेश्वर सूरि का *शत्रुञ्जय* महाकाव्य, वाग्भट्ट का नेमिनिर्माणकाव्य, वीरनन्दी का चन्द्रप्रभचरित, हरिश्चन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय इत्यादि महाकाव्य भी प्रसिद्ध हैं। कुछ महाकाव्य विभिन्न देवताओं तथा शास्त्रीय विषयवस्तु के निरूपण के लिए भी लिखे गए हैं। हेमचन्द्र (1088. 1172 ई.) का कुमारपालचरित 28 सर्गों का महाकाव्य है, जिसके प्रथम 20 सर्गों में व्याकरण के नियमों के अनुसार संस्कृत भाषा के रूपों का प्रयोग दिखाया गया है और अंतिम 8 सर्गों में प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा के व्याकरण-सम्बद्ध रूपों का प्रयोग है। इसे **दव्याश्रयकाव्य** भी कहते हैं।

आधुनिक युग में भी संस्कृत महाकाव्यों की रचना हो रही है। वर्तमान महापुरुषों तथा घटनाओं को विषय बनाकर अनेक महाकाव्य लिखे गए हैं। महापुरुषों में गुरुगोविन्दसिंह, शिवाजी, स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू आदि पर अनेक संस्कृत महाकाव्य लिखे गए हैं। आधुनिक काल में प्राचीन विषयों पर भी अनेक महाकाव्य लिखे गए हैं। यही नहीं, विदेशी धर्मों के महापुरुष भी संस्कृत

महाकाव्य के विषय बने हैं। नाटक के समान महाकाव्य भी आधुनिक संस्कृत कवियों की अत्यधिक लोकप्रिय विधा है।

सारांश

लौकिक संस्कृत भाषा में काव्य रचना का आरंभ वाल्मीकि से हुआ है। वाल्मीकि की प्रसिद्ध कृति रामायण को महाकाव्य कहते हैं। महाकाव्य का नामकरण कवि, कथानक, नायक आदि के आधार पर होता है। संस्कृत महाकाव्यों के विकास क्रम में क्रमशः कालिदास, अश्वघोष, भारवि, भट्टि कुमारदास, माघ, श्रीहर्ष आदि हैं।

- ***कालिदास** : संस्कृत कवियों में कालिदास श्रेष्ठ हैं, इसलिए इन्हें कविकुलगुरु कहते हैं। कालिदास ने दो महाकाव्य-कुमारसम्भव तथा रघुवंश लिखे हैं। इनका काल प्रथम शताब्दी ई. पू. माना जाता है।*

  कुमारसम्भव में 17 सर्ग हैं। इस महाकाव्य में शिव-पार्वती के विवाह तथा कुमार कार्तिकेय के जन्म की कथा है। रघुवंश में उन्नीस सर्ग हैं। इस महाकाव्य में कवि ने इक्ष्वाकुवंश के विभिन्न राजाओं का वर्णन किया है। परम्परा ने इसे श्रेष्ठ महाकाव्य माना है। रघुवंश और कुमारसम्भव में वैदर्भी रीति और प्रसाद गुण भरा हुआ है।
- ***अश्वघोष** : अश्वघोष के दो महाकाव्य हैं– बुद्धचरित तथा सौन्दरनन्द। इनका समय प्रथम शताब्दी ई. है। बुद्धचरित भगवान् बुद्ध के जीवन और उपदेशों का वर्णन करता है। इसमें चौदह सर्ग उपलब्ध हैं। सौन्दरनन्द में बुद्ध के सौतेले भाई नन्द की धर्मदीक्षा का वर्णन है। इसमें अठारह सर्ग हैं। अश्वघोष के दोनों महाकाव्य वैदर्भी रीति में लिखे गए हैं।*
- ***भारवि** : किरातार्जुनीय भारवि की एक मात्र रचना है। इसमें 18 सर्ग हैं। इन्द्रकील पर्वत पर दिव्य अस्त्र प्राप्त करने के लिए तपस्या करने वाले अर्जुन और किरात वेशधारी भगवान् शंकर का युद्ध इस काव्य में वर्णित है। भारवि का समय छठी शताब्दी माना जाता है। इन्होंने अलङ्कृत पद्धति में काव्य-रचना की है।*
- ***भट्टि का रावणवध** : इसका दूसरा नाम भट्टिकाव्य है। इसकी विशेषता व्याकरण को सरलता से सिखलाने में है। सामान्यतः विद्वानों ने इन्हें छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं सातवीं शताब्दी के आरंभ में माना है। इसमें रामायण की कथा सरल तथा संक्षिप्त रूप में वर्णित है। इसमें बाईस सर्ग हैं।*
- ***कुमारदास का जानकीहरण** : जानकीहरण राम की कथा पर आश्रित महाकाव्य है। कुमारदास का समय छठी शताब्दी माना जाता है।*

- ***माघ का शिशुपालवध*** : *माघ राजस्थान के भीनमाल के निवासी थे। इनका समय 700 ई. माना जाता है। शिशुपालवध में कृष्ण के द्वारा शिशुपाल के मारे जाने की कथा है। माघ शिशुपालवध की रचना में भारवि और भट्टि से प्रभावित हुए। भाषा और छन्द दोनों पर माघ का अद्भुत अधिकार है। इस काव्य में बीस सर्ग हैं।*
- ***श्रीहर्ष का नैषधीयचरित*** : *नैषधीयचरित महाकाव्य के लेखक श्रीहर्ष हैं। इनका समय 12वीं शताब्दी है। नैषधीयचरित निषध देश के राजा नल के जीवन का वर्णन करता है। इसमें 22 सर्ग है। भारवि, माघ और श्रीहर्ष इन तीनों के महाकाव्यों को संस्कृत के विद्वान् बृहत्त्रयी कहते हैं।*

  इसके अतिरिक्त अन्य महाकाव्य भी मिलते हैं, जैसे– रत्नाकर (850 ई.) का हरविजय, शिवस्वामी का कप्फणाभ्युदय, क्षेमेन्द्र (11वीं शताब्दी) का दशावतारचरित, मङ्ख (12वीं शताब्दी) का श्रीकण्ठचरित इत्यादि।

अभ्यास-प्रश्न

1. सर्गबन्ध रचना किसे कहते हैं?
2. महाकाव्य में किन गुणों वाला व्यक्ति नायक होता है?
3. महाकाव्य में कौन-कौन से रस प्रधान होते हैं?
4. महाकाव्य के मङ्गलाचरण में किन बातों का समावेश होता है?
5. महाकाव्य के नामकरण का आधार क्या होता है?
6. संस्कृत महाकाव्यों के विकासक्रम में कौन-से कवियों के नाम मुख्य रूप से लिए जाते हैं?
7. संस्कृत कवियों में कविकुलगुरु कौन माना जाता है?
8. कालिदास द्वारा लिखे हुए महाकाव्यों के नाम लिखिए।
9. शिव-पार्वती के विवाह का तथा कार्तिकेय के जन्म की कथा किस महाकाव्य में आती है?
10. अश्वघोष के दो महाकाव्यों के नाम लिखिए?
11. अश्वघोष किस शताब्दी में हुए थे?
12. सौन्दरनन्द महाकाव्य का वर्ण्य-विषय क्या है?
13. अश्वघोष के दोनों महाकाव्य किस रीति में लिखे गए हैं?
14. भारवि का समय क्या माना जाता है?

15. भारवि की रचना की कौन-सी विशेषता प्रसिद्ध है?
16. भारवि की रचना की किसी एक लोकोक्ति का उल्लेख कीजिए?
17. किरातार्जुनीय काव्य का कथानक संक्षेप में लिखिए?
18. भट्टिकाव्य किसकी रचना है?
19. भट्टिकाव्य का दूसरा नाम क्या है?
20. जानकीहरण की कथा किस ग्रन्थ पर आधारित है?
21. माघ का जन्मस्थान कहाँ माना जाता है?
22. माघ ने शिशुपालवध काव्य में किन शास्त्रों के विषय में अपना ज्ञान प्रकाशित किया है?
23. माघ के बाद किस महाकवि को सर्वाधिक ख्याति मिली?
24. नल और दमयन्ती की कथा किस महाकाव्य में आती है?
25. "कान्यकुब्जनरेश" यह विशेषण किसके लिए प्रयुक्त हुआ है?
26. "नैषधं विद्वदौषधम्" इस सूक्ति का क्या तात्पर्य है?
27. बृहत्त्रयी में किन कवियों की रचनाएँ आती हैं?
28. लघुत्रयी में कौन-कौन से ग्रंथ आते हैं?
29. हरविजय महाकाव्य किस कवि की कृति है?
30. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—
    (क) लौकिक संस्कृत भाषा में काव्य रचना का आरंभ .... महर्षि से हुआ।
    (ख) .... को नायक बनाकर वाल्मीकि ने आदि काव्य प्रस्तुत किया।
    (ग) महाकाव्य के उद्देश्य के रूप में धर्म .... काम और .... में से कोई एक फल होता है
    (घ) महाकाव्य में सर्गों की संख्या .... से अधिक होनी चाहिए।
    (ङ) बुद्ध के जीवन और उपदेशों का वर्णन .... महाकाव्य में मिलता है।
    (च) बुद्धचरित के वर्णन .... से समता रखते हैं।
    (छ) .... भारवि की एकमात्र रचना है।
    (ज) भारवि ने कथानक से अधिक .... को महत्त्व दिया।
    (झ) कुमारदास का समय .... शताब्दी माना जाता है।
    (ट) महाकवि श्रीहर्ष का समय .... शताब्दी है।

पंचम अध्याय

ऐतिहासिक महाकाव्य

पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीयों के विषय में यह दुष्प्रचार किया है कि उनमें ऐतिहासिक चेतना का अभाव था। किन्तु राजतरङ्गिणी आदि ऐतिहासिक काव्यग्रन्थ इस आक्षेप का पर्याप्त अंश तक निराकरण करते हैं। वस्तुतः जिस अर्थ में पाश्चात्य जगत् में इतिहास का अर्थ लिया जाता है, उस अर्थ में हमारे यहाँ बहुत कम ग्रन्थ हैं, क्योंकि इतिहास की हमारी कल्पना ही पृथक् थी। प्राचीन घटनाओं का सामान्यतः विवरण तो लोग देते थे, किन्तु उनके साथ तिथियों को अंकित नहीं करते थे। इस अर्थ में महाभारत इतिहास-ग्रन्थ कहा गया है। वैदिक साहित्य के अनुशीलन से पता चलता है कि इतिहास लिखने वालों का एक अलग सम्प्रदाय था। इतिहास के अंतर्गत घटनाओं का सच्चा विवरण दिया जाता था।

राजशेखर ने कहा है कि इतिहास दो प्रकार का होता है– **परिक्रिया** और **पुराकल्प**। परिक्रिया उस इतिहास को कहते हैं, जिसका नायक एक व्यक्ति होता है अर्थात् किसी एक राजा के चरित्र का वर्णन करना परिक्रिया है। रामायण इसी प्रकार का ग्रन्थ है। इसी अर्थ में नवसाहसांकचरित, विक्रमांकदेवचरित आदि ग्रन्थ हैं। दूसरी ओर पुराकल्प वह इतिहास है, जिसमें अनेक नायकों का वर्णन होता है। महाभारत, राजतरङ्गिणी आदि इसी प्रकार के इतिहास-ग्रन्थ हैं।

यदि हम संस्कृत के अभिलेखों का अध्ययन करें, तो वहाँ पर्याप्त ऐतिहासिक सूचनाएँ काव्य के रूप में मिलेंगी। यहाँ तक कि उनमें तिथियों का भी निर्देश हुआ है। यह सही है कि संसार की क्षणिकता की दार्शनिक भावना से अभिभूत होने के कारण संस्कृत के विद्वानों ने लौकिक व्यक्तियों तथा घटनाओं को बहुत महत्त्व न देकर राम, कृष्ण, शिव आदि देवताओं के

विषय में ही महाकाव्य लिखे। फिर भी राजाओं की प्रशस्ति का गान करने वाले कवियों का भी यहाँ अभाव नहीं था। काल के मुख में ऐसी बहुत-सी रचनाएँ चली गईं जिनमें ऐतिहासिक तथ्यों का भण्डार था। लोकोत्तर चरित्र का वर्णन करने वाले महाकाव्यों को यहाँ अधिक सम्मान मिला और लौकिक पुरुषों से सम्बद्ध काव्य आदर नहीं पा सके। विक्रमांकदेवचरित अज्ञात कोने में पड़ा रहा जबकि नैषधीयचरित टीकाओं से विभूषित होता रहा। एक ही लेखक, बाणभट्ट की कादम्बरी पण्डितों के बीच आदर पाती रही, जबकि उनका हर्षचरित उतना आदर नहीं पा सका। फिर भी कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्तियाँ गद्य में या महाकाव्यों के रूप में लिखीं। गुप्तकाल के अभिलेखों में इन प्रशस्तियों का उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। यह बात अवश्य है कि इतिहास पर काव्य का ऐसा गहरा रंग चढ़ा है कि शुद्ध इतिहास को निकालना बहुत कठिन है।

प्रारंभिक ग्रन्थ

संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक रचनाएँ काव्य के रूप में ही मिलती हैं। कवियों ने अपनी रचनाओं के द्वारा अपने आश्रयदाताओं को अमर कर दिया है। बाणभट्ट ने अपने आश्रयदाता हर्षवर्धन के प्रारम्भिक जीवन को आधार बनाकर हर्षचरित नामक गद्य-काव्य लिखा। वस्तुतः इस रचना में बाण ने अपना, हर्षवर्धन का तथा उसके पूर्वजों का भी काव्यात्मक वर्णन किया है। हर्ष की राज्यप्राप्ति के समय तक की घटनाओं का वर्णन करके उन्होंने अपनी रचना समाप्त कर दी है। इसलिए बाण इतिहासकार के रूप में हमें उतना सन्तुष्ट नहीं करते। वाक्पतिराज ने प्राकृत काव्य "गउडवहो" में कन्नौज के राजा यशोवर्मन् की विजय का वर्णन किया है। इसका समय 750 ई. है। कश्मीर के ललितादित्य ने यशोवर्मन् को संग्राम में हराया था। इस काव्य में ग्रामीण जीवन के सजीव चित्र मिलते हैं। पद्मगुप्त का नवसाहसांकचरित (1005 ई.) एक प्रकार से संस्कृत का पहला ऐतिहासिक महाकाव्य है, जिसमें 18 सर्ग हैं। इसमें मालव-नरेश सिन्धुराज का इतिहास वर्णित है। सिन्धुराज भोज के पिता थे। इस महाकाव्य में शशिप्रभा के साथ उनके विवाह का वर्णन है। पद्मगुप्त पहले राजा मुज के सभाकवि थे। मुज की मृत्यु के बाद सिन्धुराज ने पद्मगुप्त का आदर किया। पद्मगुप्त पर कालिदास की रसमयी

पद्धति का बहुत प्रभाव है, इसीलिए इन्हें परिमल-कालिदास भी कहा गया है।

विक्रमाङ्कदेवचरित

इस काव्य के लेखक बिल्हण कश्मीरी थे तथा शिक्षित होने के बाद भ्रमण-हेतु कश्मीर छोड़कर निकल पड़े। मथुरा, कन्नौज, प्रयाग, काशी इत्यादि स्थानों से होते हुए वे अन्त में कल्याण के चालुक्य-नरेश विक्रमादित्य (षष्ठ) की राजसभा में पहुँचे। बिल्हण का वहाँ बहुत सम्मान हुआ। अपने संरक्षक की प्रशंसा में बिल्हण ने वहीं 18 सर्गों का महाकाव्य विक्रमांकदेवचरित लिखा। इसका रचनाकाल 1088 ई. है। मूलतः यह ऐतिहासिक ग्रन्थ है, जिसे महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। राजा विक्रमादित्य के पूर्वजों का वर्णन करते हुए इन्होंने इसके प्रथम सात सर्गों में ऐतिहासिक तथ्य दिए हैं। इसमें 8वें सर्ग से 17वें सर्ग तक विक्रमादित्य (षष्ठ) का काव्यात्मक वर्णन है। इसमें मुख्यतः नायक और नायिका का प्रणय वर्णित है। विवाह, जलक्रीड़ा, मृगया आदि के वर्णन में बिल्हण ने कई सर्ग केवल महाकाव्य- धर्म का निर्वाह करने के लिए लगाए हैं। बिल्हण इतिहासकार के रूप में निष्पक्ष नहीं हैं, क्योंकि वे राष्ट्रकूटों पर तैलप (873.97 ई.) की विजय का तो वर्णन करते हैं, किन्तु मालव-नरेश द्वारा उसकी पराजय का नहीं। बिल्हण इस महाकाव्य के दो सर्गों में अपने संरक्षक के पारिवारिक कलह का भी वर्णन करते हैं। अंतिम सर्ग में उन्होंने अपने कुटुम्ब का वर्णन करते हुए अपनी भारत-यात्रा का भी वृत्तान्त लिखा है।

काव्य की दृष्टि से विक्रमांकदेवचरित बहुत सफल है। इसमें प्रवाह, रोचकता और सरलता सभी गुण हैं। प्रसादपूर्ण वैदर्भी शैली में यह लिखा गया है। भाषा सरल और स्पष्ट है। लंबे समासों का प्रयोग इसमें नहीं मिलता। कालिदास की काव्यशैली बिल्हण पर छायी हुई है। बिल्हण ने चौरपञ्चाशिका नामक गीतिकाव्य भी लिखा था। अपनी जन्मभूमि कश्मीर पर कवि को बहुत गर्व है। वे कहते हैं कि केसर तथा कविता कश्मीर को छोड़कर अन्यत्र नहीं होती। कस्तूरी की गंध से युक्त पश्मीने की पट्टियाँ तथा वितस्ता (झेलम) में चलने वाली नौकाओं का आनंद स्वर्ग जैसा सुख देता है। बिल्हण में कवित्वशक्ति एवं पाण्डित्य के साथ-साथ ऐतिहासिक चेतना भी है।

राजतरङ्गिणी

राजतरङ्गिणी निश्चित रूप से संस्कृत-साहित्य का श्रेष्ठ ऐतिहासिक ग्रंथ है, जिस पर काव्य का रंग बहुत गहरा नहीं है। कल्हण और उनके इस ग्रन्थ पर संस्कृत साहित्य को गर्व है। कल्हण के पिता चम्पक कश्मीर के राजा हर्ष के सच्चे अनुयायी थे। हर्ष की हत्या हो जाने पर चम्पक ने राजनीति से संन्यास ले लिया और इसलिए कल्हण भी राजनीति से वञ्चित रह गए। कल्हण के चाचा कनक हर्ष के संगीत-शिक्षक थे। राजा उनसे पूर्णतः प्रभावित थे। उन्हीं के कारण परिहासपुर में बुद्धप्रतिमा को बचाया जा सका था। कल्हण शिव के भक्त होते हुए भी बौद्धमत के प्रशंसक थे। उन्होंने संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन किया था। राजतरङ्गिणी की रचना में कश्मीर के समस्त ऐतिहासिक साधनों का उन्होंने प्रयोग किया था। उन्होंने उस काव्य को 1148 ई. में लिखना आरंभ करके उसे तीन वर्षों में पूरा किया था। कल्हण कहते हैं कि उन्होंने प्राचीन राजाओं के कथासंग्रह, नीलमतपुराण, विभिन्न शिलालेख, प्रशस्ति पत्र, प्राचीन मुद्रा आदि का उपयोग करके इस इतिहास-ग्रन्थ को प्रामाणिक बनाया है। उन्होंने देवालयों, प्राचीन भवनों, स्मारकों और शासन-पत्रों का भी अवलोकन किया था।

राजतरङ्गिणी में आठ तरङ्ग हैं। इसमें आठवाँ तरङ्ग ग्रन्थ का प्रायः अर्धभाग है। इसमें समकालिक तथा निकट अतीत का इतिहास है। कवि के साक्षात् अनुभव पर आश्रित होने के कारण इस तरङ्ग की बातें विशेषतः प्रामाणिक हैं। आरम्भिक तरङ्गों में पुराणों का आधार लिया गया है, इसलिए कल्पना का समावेश वहाँ अधिक है। जैसे-जैसे कवि सुदूर अतीत से निकट अतीत की ओर अग्रसर होता गया, वैसे-वैसे उसके वर्णनों में प्रामाणिकता बढ़ती गई।

राजतरङ्गिणी का आरम्भ 13वीं शताब्दी ई. पू. के किसी गोनन्द नामक राजा के वर्णन से होता है, किन्तु प्रथम तीन तरङ्गों में काल या तिथि का उल्लेख नहीं है। इसमें पहली तिथि 813 ई. के आसपास है और यहाँ से आरम्भ करके 1150 ई. तक की घटनाओं का प्रामाणिक, पूर्ण और वैज्ञानिक रीति से वर्णन किया गया है। नैतिकता का प्रचार करना कल्हण का मुख्य उद्देश्य लगता है, इसलिए कई राजाओं और मन्त्रियों के अनैतिक कार्यों का वर्णन इन्होंने खुलकर किया है। कल्हण ने कश्मीर में धार्मिक सहिष्णुता दिखाई है, किन्तु कुछ राजाओं के धर्म-विरोधी कार्यों को भी इन्होंने प्रकाशित

किया है। कल्हण के इतिहास पर भारतीय जीवन-दर्शन, युगविभाजन, कर्म-सिद्धान्त, भाग्यवाद, तन्त्र-मन्त्र आदि का स्पष्ट प्रभाव है। इन्होंने कश्मीरी नागरिकों की कटु आलोचना की है। लोभी पुरोहितों, अनुशासनहीन सैनिकों तथा दुष्ट कर्मचारियों की इन्होंने घोर निन्दा की है। रानी दिद्दा की महत्त्वाकांक्षा का इन्होंने विस्तार से वर्णन किया है।

राजतरङ्गिणी एक सच्चे इतिहासकार द्वारा काव्यात्मक शैली में लिखा गया ग्रन्थ है। अलंकारों का प्रयोग बहुत स्वाभाविक रूप से इसमें किया गया है। प्रायः पूरा ग्रन्थ अनुष्टुप् छन्द में लिखा गया है। कहीं-कहीं छन्द बदले गए हैं। कल्हण मूलतः अपने को कवि बतलाते हैं। कुल मिलाकर यह महाकाव्य संस्कृत का ऐतिहासिक गौरव-ग्रन्थ है।

अन्य ऐतिहासिक महाकाव्य

कल्हण की राजतरङ्गिणी को आगे बढ़ाने का कार्य विभिन्न कालों में जोनराज (1450 ई.), श्रीवर (1486) तथा शुक (1596 ई.) ने किया। फलतः अपने-अपने समय तक का इतिहास इन कवियों ने प्रस्तुत किया। अकबर को राजतरङ्गिणी से बड़ा प्रेम था, इसलिए इसका अनुवाद उसने फारसी में कराया। फारसी में इसके तीन अनुवाद मिलते हैं।

संस्कृत में ऐतिहासिक काव्यपरंपरा आगे भी चली। जल्हण ने **सोमपालविलास** में सुस्सल द्वारा विजित राजपुरी के राजा का विवरण लिखा। हेमचन्द्र (1088.1172 ई.) ने अनहिलवाड़ के चालुक्य-नरेश कुमारपाल से सम्बद्ध **कुमारपालचरित** लिखा। इसमें जैनमत की महिमा का वर्णन अधिक तथा इतिहास कम है। 13वीं शताब्दी के कवि सोमेश्वर ने **कीर्तिकौमुदी** नामक महाकाव्य में गुजरात के राजा वस्तुपाल का वर्णन किया है। राजा बीसलदेव के सभापण्डित अरिसिंह ने ग्यारह सर्गों का **संस्कृत-संकीर्तन** नामक महाकाव्य लिखा। इसमें भी वस्तुपाल के धार्मिक कृत्यों का वर्णन है। नयचन्द्रसूरि ने **हम्मीर-महाकाव्य** चौदह सर्गों में लिखा, जिसमें रणथम्भौर के चौहान नरेश हम्मीर का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार एक अज्ञात लेखक ने **पृथ्वीराजविजय** महाकाव्य लिखा है, जो अपूर्ण रूप में केवल बारह सर्गों में प्राप्त हुआ है। आधुनिक काल में डॉ. काशीनाथ मिश्र ने राजतरङ्गिणी के ढाँचे पर मिथिला के कर्णाटवंशीय राजाओं का वर्णन करते हुए आठ तरङ्गों

में **कर्णाटराजतरङ्गिणी** लिखी। इस प्रकार कवियों ने किसी राजा या उसके कार्यों से प्रसन्न होकर ऐतिहासिक महाकाव्य लिखे हैं।

सारांश

भारत में ऐतिहासिक परम्परा पुरानी है। महाभारत एक विशाल ऐतिहासिक ग्रन्थ है। राजशेखर के अनुसार परिक्रिया और पुराकल्प ये इतिहास के दो भेद होते हैं, जिसमें एक नायक होता है, उसे परिक्रिया कहते हैं। रामायण, नवसाहसाङ्कचरित, विक्रमाङ्कदेवचरित आदि ग्रन्थ इसी विधा में आते हैं। पुराकल्प वह इतिहास है, जिसमें अनेक नायकों का वर्णन होता है। महाभारत और राजतरङ्गिणी आदि इसी प्रकार के इतिहास ग्रन्थ हैं। बाणभट्ट ने हर्षवर्धन को आधार बनाकर हर्षचरित नामक गद्यकाव्य लिखा है। वाक्पतिराज ने गउडवहो नामक प्राकृतकाव्य में कन्नौज के यशोवर्मन् की विजय का वर्णन किया है। इसका समय 700 ई. है। पद्मगुप्त का नवसाहसाङ्कचरित जो 1005 ई. में लिखा गया, वह संस्कृत का पहला ऐतिहासिक महाकाव्य है। इसमें मालवा-नरेश सिन्धुराज का इतिहास वर्णित है।

बिल्हण का विक्रमाङ्कदेवचरित *: बिल्हण ने चालुक्य नरेश विक्रमादित्य (षष्ठ) की प्रशंसा में विक्रमाङ्कदेवचरित लिखा। इसका रचना-काल 1088 ई. है। इसमें 18 सर्ग हैं।*

कल्हण की राजतरङ्गिणी *: यह संस्कृत का श्रेष्ठ इतिहास-ग्रन्थ है। इसके रचयिता कल्हण है। इसकी रचना 1148 ई. में आरम्भ होकर तीन वर्षों में पूरी हुई। इसमें आठ तरङ्ग हैं। ई. पू. 13वीं शताब्दी के गोनन्द राजा से इसका आरभ करके 1150 ई. तक के राजाओं से सम्बन्धित घटनाओं का इसमें वर्णन हैं। पूरा ग्रन्थ प्रायः अनुष्टुप छन्द में है। यह संस्कृत का ऐतिहासिक गौरव-ग्रन्थ है।*

अन्य ऐतिहासिक महाकाव्य

जोनराज (1450 ई.), श्रीवर (1486 ई.) तथा शुक (1596 ई.) ने राजतरङ्गिणी की परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य किया। इन तीनों ने अपने-अपने समय का इतिहास प्रस्तुत किया है।

हेमचन्द्र (1088 ई. से 1172 ई.) ने अनहिलवाड़ के चालुक्य-नरेश कुमारपाल से सम्बद्ध कुमारपालचरित भी लिखा है। 13वीं शताब्दी में सोमेश्वर ने कीर्तिकौमुदी नामक महाकाव्य में गुजरात के राजा वस्तुपाल का वर्णन किया है। राजा वीसलदेव के सभापण्डित अरिसिंह ने 11 सर्गों का संस्कृत संकीर्तन नामक महाकाव्य लिखा।

नयचन्द्रसूरि ने 14 सर्गों में रणथम्भौर के राजा हम्मीर का वर्णन किया है। किसी अज्ञात लेखक का पृथ्वीराजविजय नामक ऐतिहासिक महाकाव्य अपूर्ण रूप से 12 सर्गों में प्राप्त हुआ है। काशीनाथ मिश्र ने कर्णाटराजतरङ्गिणी में मिथिला के कर्णाट राजवंश पर ऐतिहासिक महाकाव्य आधुनिक काल में लिखा है।

अभ्यास-प्रश्न

1. राजशेखर ने इतिहास को कितने भागों में बाँटा है? वे कौन-कौन से हैं?
2. पुराकल्प के वर्णन की क्या विशेषता होती है?
3. संस्कृत कवियों ने अपने महाकाव्य में लौकिक व्यक्तियों और घटनाओं को महत्त्व क्यों नहीं दिया है?
4. बाणभट्ट का कौन-सा ग्रन्थ इतिहासपरक है?
5. नवसाहसाङ्कचरित के लेखक कौन थे?
6. पद्मगुप्त को परिमलकालिदास क्यों कहा गया है?
7. बिल्हण ने अपनी भारतयात्रा का वर्णन किस ग्रन्थ में किया है?
8. राजतरङ्गिणी के लेखक कौन है?
9. राजतरङ्गिणी में किस प्रदेश का इतिहास वर्णित है?
10. तीन ऐतिहासिक काव्यों के नाम लिखिए।
11. रिक्त स्थान भरिए–
    (क) राजतरङ्गिणी संस्कृत साहित्य का श्रेष्ठ .... ग्रन्थ है।
    (ख) राजतरङ्गिणी में .... तरङ्ग हैं।
    (ग) कल्हण की रचना का मुख्य उद्देश्य राजाओं के .... कार्यों का वर्णन था।
    (घ) अकबर ने राजतरङ्गिणी का अनुवाद .... भाषा में कराया।
    (ङ) कर्णाटराजतरङ्गिणी के लेखक .... हैं।

षष्ठ अध्याय

काव्य की अन्य विधाएँ

संस्कृत साहित्य के अंतर्गत बहुत-सी ऐसी पद्य-रचनाएँ हैं, जिन्हें महाकाव्य नहीं कहा जाता, फिर भी काव्य की सामान्य परिभाषा में ये रचनाएँ आती हैं। इन्हें खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, मुक्तक, स्तोत्रकाव्य इत्यादि कहा जाता है। इस अध्याय में महाकाव्य से भिन्न रूप के पद्य-काव्य की विधाओं का क्रमशः विवेचन किया जा रहा है।

खण्डकाव्य

लघु कथानक पर आश्रित काव्य को खण्डकाव्य कहा जाता है। कभी-कभी इसे **गीतिकाव्य** भी कहते हैं, यदि कोमल भावों को कवि अपनी अनुभूति और कल्पना से पूर्ण करके संगीतमयी भाषा में प्रकट करे। संस्कृत भाषा में **ऋतुसंहार** तथा **मेघदूत** उत्कृष्ट खण्डकाव्य हैं।

ऋतुसंहार

यह कालिदास की रचना है। इसमें छह सर्गों में ग्रीष्म आदि ऋतुओं का काव्यमय वर्णन है। इन ऋतुओं के वर्णन में कालिदास ने शृङ्गारभावना को प्रमुखता दी है। इसलिए सर्वत्र नायक-नायिका के संवाद के रूप में ऋतुओं को उपस्थित किया है। ऋतु परिवर्तन से जहाँ बाह्य प्रकृति में नवीनता आती है, वहाँ युवक-युवतियों में विविध प्रणय-क्रीड़ाओं तथा शृङ्गार की चेष्टाओं का उदय दिखाया गया है। वसन्त का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं
स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः
सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते।।

"ये प्रिये! जिधर देखो आनन्द ही आनन्द है। वसन्त के आते ही वृक्ष फलों से लद गए हैं। जल में कमल खिल गए हैं। स्त्रियाँ प्रियों से मिलने के लिए उत्सुक हो गई हैं। पवन सुगन्धपूर्ण हो गई है। संध्या सुहावनी हो गई है। दिन आकर्षक लगते हैं। सचमुच वसन्त में सब कुछ अधिक सुन्दर हो गया है।"

ऋतुसंहार कालिदास की युवावस्था की रचना कहा जाता है। उनके उत्कृष्ट काव्य-गुणों के अंकुर इसमें दिखाई पड़ते हैं। रूपक और उपमा जैसे अलंकारों का प्रयोग एक तरुण कवि के रूप में कालिदास ने यहाँ किया है।

मेघदूत

महाकवि कालिदास की यह रचना यद्यपि केवल 120 श्लोकों की है, तथापि इसने इन्हें अपूर्व ख्याति दी है। मेघदूत प्रबन्धात्मक खण्डकाव्य है। इसमें एक ऐसे यक्ष की विरह-व्यथा का वर्णन है, जो एक वर्ष के लिए अपनी प्रिय पत्नी से वियुक्त कर दिया जाता है। उसकी पत्नी हिमालय में स्थित अलकापुरी में यक्षों की नगरी में रहती है। यक्ष स्वयं (मध्य भारत में स्थित) रामगिरि में प्रवास कर रहा है। वर्षाकाल के आरम्भ में वह मेघ को दूत बनाकर अपना संदेश प्रियतमा के पास भेजता है।

मेघदूत में दो भाग हैं– पूर्वमेघ और उत्तरमेघ। पूर्वमेघ में रामगिरि से अलकापुरी तक मेघ के मार्ग का रोचक वर्णन है। भारतवर्ष के प्राकृतिक सौंदर्य का सुन्दर चित्र कालिदास ने इसमें खींचा है। उज्जयिनी का वर्णन अपेक्षाकृत विस्तार से किया गया है। उत्तरमेघ में अलकापुरी के वर्णन के प्रसंग में यक्ष के भवन तथा उसकी प्रियतमा का चित्र अंकित किया गया है। उसे मार्मिक संदेश भी दिया गया है। यक्ष मेघ को एक चेतन संदेशवाहक मानता हुआ भी उसके स्वाभाविक गुणों से अवगत है। इसलिए वह कहता है– तुमसे प्रार्थना है कि जब मेरी प्रिया के निवास-स्थान पर पहुँचो, तो बिजली को ज़ोर से चमकने न देना। मेरी पत्नी कहीं स्वप्न देख रही होगी या मेरा ध्यान कर रही होगी, तो तुम्हारा गर्जन सुनकर जाग जाएगी।

मेघदूत में विरह और प्रणय का अद्भुत चित्र खींचा गया है। पूरे काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग हुआ है। कालिदास ने इसमें आन्तर और बाह्य दोनों प्रकृतियों का सुरम्य समन्वय किया है। मेघदूत के आधार पर संस्कृत

में दूत-काव्यों की परम्परा चल पड़ी। विभिन्न कवियों ने विभिन्न शताब्दियों में अनेक संदेश-काव्य लिखे, जैसे– जम्बू कवि का **चन्द्रदूत**, धोयी कवि का **पवनदूत**, वेङ्कटनाथ, रूपगोस्वामी, वामनभट्ट बाण के पृथक्-पृथक् **हंसदूत** इत्यादि। प्रायः पचास दूतकाव्य मेघदूत के अनुकरण पर लिखे गए हैं।

गीतिकाव्य

संस्कृत में गीतिकाव्यों की समृद्ध परंपरा रही है। ऋग्वेद में उषा की स्तुति में प्रथम गीतियाँ लिखी गई थीं, जिनमें ऋषियों ने अपने कोमल भावों को प्रकट किया था। ऋग्वेद के अन्य सूक्तों में भी हमें सुख और दुःख को प्रकट करने वाले गीत मिलते हैं, जिनमें ऋषियों ने व्यक्तिगत अनुभवों को निश्छल भाव से प्रकट किया है। ऋग्वेद में द्यूतकार का गीत, रात्रिगीत तथा मण्डूकों से सम्बद्ध गीत इसी प्रकार के हैं। गीतिकाव्यों को लोग अवकाश के समय में या विशिष्ट अवसरों पर गाते हैं। इनमें विरह, भक्ति या शृङ्गार से सम्बद्ध गीत होते हैं। इनकी रचना ऐसे छन्दों में होती है, जिन्हें सरलता से गाया जा सके। सभी लोग इन गीतों को सुनकर भावविभोर हो उठते हैं। गीति-काव्य का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसमें शृङ्गार, भक्ति या विरह से सम्बद्ध प्रबन्धात्मक और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य आते हैं।

गीतगोविन्द

यह जयदेवरचित एक अत्यन्त लोकप्रिय गीतिकाव्य है। जयदेव बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन की राजसभा में रहते थे। ये कृष्णभक्त कवि थे। इस काव्य में राधाकृष्ण के प्रेम का वर्णन है। इसमें बारह सर्ग हैं, जिनमें राधाकृष्ण की प्रणय-लीला की झाँकियाँ गीतों के द्वारा प्रकट की गई हैं। इसके प्रत्येक अक्षर में संगीत है। मधुर, कोमल-कान्त पदावली का तो यह कोश ही है। उदाहरण के लिए–

ललितलवङ्गलता-परिशीलन-कोमलमलयसमीरे।
मधुकरनिकरकरम्बित-कोकिल-कूजितकुञ्जकुटीरे।।

यहाँ लम्बा समास होने पर भी शैली में मनोरमता और प्रवाह विद्यमान है।

गीतगोविन्द में काव्य का मौलिक रूप मिलता है। प्रत्येक गीत के राग और ताल का निरूपण किया गया है। पूर्वी भारत में इसका गान-यात्रा

(उत्सव-विशेष) आदि विविध अवसरों पर किया जाता है। संस्कृत के गीति-काव्यों में यह श्रेष्ठ है। गीत और कथानक का नाटकीय सम्मिश्रण होने से कुछ पाश्चात्य विद्वान् इसे गीति-नाटक मानते हैं, किंतु काव्य के अन्तःसाक्ष्य से यह पता चलता है कि जयदेव इसे महाकाव्यात्मक गीति-काव्य के रूप में ही देखना चाहते थे, नाट्य-रूप में नहीं।

चौरपञ्चाशिका

यह 50 श्लोकों का गीतिकाव्य है, जिसमें किसी राजकुमारी से कवि के गुप्त प्रेम का वर्णन है। इस प्रेम-प्रसंग का पता जब राजा को चलता है, तब वह कवि को प्राणदण्ड का आदेश देता है। जब कवि दण्ड के लिए ले जाया जा रहा था, तब उसने राजकुमारी के साथ बिताए सुख की स्मृति के पचास श्लोक पढ़े। इन्हें सुनकर राजा अभिभूत हो गया और कवि को राजकुमारी से विवाह करने की अनुमति उसने दे दी। इस काव्य के विषय में उपर्युक्त कथा प्रचलित है। कहा जाता है कवि का नाम चौर था, जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है। कतिपय विद्वानों के मतानुसार इसके रचयिता कवि बिल्हण थे। कालिदास के मेघदूत के समान उन्होंने भी इस प्रेम-प्रसंग की कल्पना ही की होगी। काव्य के सभी श्लोक वसन्ततिलका छन्द में हैं तथा अद्यापि से इन श्लोकों का आरम्भ होता है।

मुक्तक काव्य

मुक्तक काव्य भी गीति के रूप में होते हैं, किन्तु इनका प्रत्येक श्लोक स्वतंत्र होता है, प्रबन्धात्मक नहीं। प्राचीन काव्यशास्त्री मुक्तकों को श्रेष्ठ काव्य नहीं मानते थे, किन्तु आनन्दवर्धन ने मुक्तकों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। मुक्तकों में प्रत्येक श्लोक चमत्कारपूर्ण होता है। विभिन्न अवसरों पर रचे गए मुक्तक श्लोकों का संग्रह करके शतक आदि की रचना होती है। विभिन्न युगों में कई प्रकार के मुक्तक काव्य संस्कृत भाषा में लिखे गए।

भर्तृहरि का शतकत्रय

भर्तृहरि का समय सातवीं शताब्दी ई. माना जाता है। इन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर प्रायः सौ-सौ श्लोकों के तीन संग्रह बनाए– **शृङ्गारशतक, नीतिशतक** और **वैराग्यशतक**। इनमें प्रत्येक श्लोक अपने में परिपूर्ण है।

शृङ्गारशतक में काम और विलास की नाना स्थितियों, स्त्रियों के हावभाव, कटाक्ष आदि का सुन्दर वर्णन किया गया है। काम के महत्त्व की घोषणा करते हुए कवि कहता है कि नारी का प्रत्येक कर्म मोहक होता है। बहुत कम लोग काम के दर्प को चूर करने में समर्थ होते हैं **(कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः)**।

नीतिशतक में कवि ने विद्या, वीरता, सज्जनता आदि उदार वृत्तियों का वर्णन करते हुए मूर्खता, लोभ, धन, दुर्जनता आदि की निन्दा भी की है। इसके श्लोक जन-समाज में बहुत प्रचलित हैं। इसमें स्वाभाविकता भरपूर है।

वैराग्यशतक में कवि ने संसार की असारता और वैराग्य की महत्ता का प्रतिपादन किया है। इसमें काव्य-प्रतिभा और दार्शनिकता का अपूर्व समन्वय है। भर्तृहरि संस्कृत में मुक्तक गीतिकाव्य की परंपरा के सफल कवि हैं। भाषा की सरलता के कारण इनके भाव पाठकों पर सीधा प्रभाव डालते हैं। अनेक छन्दों में विषय को रोचक बनाकर अनुरूप उदाहरण देकर सुन्दर सूक्तियों से भर्तृहरि श्रोता को तत्काल आकृष्ट कर लेते हैं।

अमरुशतक

संस्कृत गीतिकाव्यों में अमरुशतक अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है। यद्यपि यह शतक है, किन्तु इसमें प्रायः डेढ़ सौ श्लोक मिलते हैं। निश्चय ही अमरु कवि के श्लोकों में दूसरे कवियों ने भी अपने श्लोक मिलाए होंगे। अमरुशतक का सर्वप्रथम उल्लेख आनन्दवर्धन (850 ई.) ने किया। वे कहते हैं कि अमरु का प्रत्येक श्लोक भावों की उत्कृष्टता के कारण अपने में ही पूर्ण काव्य है। यह शृङ्गारपूर्ण श्लोकों का संग्रह है। शृङ्गार के सभी पक्ष इसमें चित्रित हैं। कहीं मानवती नायिका के अनुराग का चित्र है, तो कहीं प्रियतम के लौटने पर उसके क्रोध के दूर होने का वर्णन है। समासों का अभाव और शब्दों का सुपरिचित होना इसके प्रति आकर्षण का सबसे बड़ा कारण है। अमरु कवि प्रेम के श्रेष्ठ चित्रकार हैं, इसमें सन्देह नहीं। अमरुकवि का प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित है, यद्यपि दूसरे छन्द भी उन्होंने प्रयुक्त किए हैं। अमरुकवि का व्यक्तित्व या समय भले ही अज्ञात हो, किन्तु उनकी काव्य-रचना अमर है।

17वीं शताब्दी के कवि पण्डितराज जगन्नाथ ने अनेक रमणीय श्लोकों का संग्रह अपने **भामिनीविलास** में किया। इसमें गीत्यात्मक मुक्तक पद्यों के

चार खण्ड हैं। पदलालित्य तथा अनुप्रासों के विन्यास में जगन्नाथ अद्वितीय हैं। उन्होंने **गङ्गालहरी, सुधालहरी** आदि छोटे स्तोत्र-काव्यों की भी रचना की थी। उनके अतिरिक्त पण्डितराज ने काव्याशास्त्र का महान् ग्रन्थ **रसगङ्गाधर** भी लिखा था।

स्तोत्र-काव्य

भक्तिप्रधान गीतिकाव्यों को स्तोत्रकाव्य कहा जाता है। विभिन्न देवताओं, आचार्यों या तीर्थों की स्तुति में ये स्तोत्र लिखे गए हैं। इनका सस्वर पाठ भक्तों के हृदय में आह्लाद उत्पन्न करता है। भारतवर्ष में विभिन्न सम्प्रदायों के कवियों ने अपने-अपने सम्प्रदायों से सम्बद्ध स्तोत्रों की रचना की। वैदिक काल से लेकर आज तक स्तोत्र लिखे जाते रहे हैं। इनमें भक्त कवियों के भाव व्यक्त हुए हैं। पुष्पदन्त नामक कवि ने शिखरिणी छन्द में **शिवमहिम्नः स्तोत्र** लिखा था। मयूरभट्ट ने सूर्य की स्तुति स्रग्धरा छन्द में अपने **सूर्यशतक** नामक काव्य में की, जिसमें अनुप्रासों की मधुर ध्वनि अत्यन्त आकर्षक है। बाणभट्ट ने सूर्यशतक के अनुकरण पर **चण्डीशतक** नामक काव्य उसी छन्द में लिखा। बाण और मयूर दोनों का समय सातवीं शताब्दी ई. का पूर्वार्द्ध है।

शंकराचार्य ने भी अनेक स्तोत्र लिखे, जिनमें **भजगोविन्दम्** और **सौन्दर्यलहरी** विख्यात हैं। जैन और बौद्ध कवियों ने भी अपने आचार्यों तथा गुरुओं की प्रशंसा में शताधिक श्लोक लिखे।

प्राकृत काव्य

संस्कृत गीतियों के साथ प्राकृत गीतिकाव्य का भी विकास हुआ। इसमें हाल नामक कवि की गाहासत्तसई या **गाथासप्तशती** बहुत प्रसिद्ध है। इसका रचनाकाल निश्चित नहीं है, किन्तु जिस प्रकार की प्राकृत भाषा इसमें प्रयुक्त हुई है, वह 200 ई. में प्रचलित थी। गाथासप्तशती में प्रदर्शित जीवन संस्कृत काव्य में सामान्यतया प्रदर्शित जीवन से भिन्न है। इसमें ग्रामीण लोक, कृषक, गोपालक, उद्यान में खेलने वाली कन्याएँ आदि चित्रित हैं। सामान्य लोक-जीवन का चित्र इसमें पूर्णतः अंकित है। ग्रामीण स्त्रियों का स्वाभाविक वर्णन इसमें किया गया है। इसमें सात सौ प्राकृत गाथाएँ (पद्य) हैं।

गाथासप्तशती के अनुकरण पर जयदेव के समकालिक गोवर्धनाचार्य ने **आर्यासप्तशती** की रचना की, जो संस्कृत भाषा में 700 मुक्तक रूप में लिखे

गये आर्या छन्द के श्लोकों का संग्रह है। इसमें कवि ने जहाँ एक ओर नागरिक स्त्रियों की श्रृङ्गार चेष्टाओं का चित्रण किया है, वहाँ दूसरी ओर ग्रामीण महिलाओं की स्वाभाविक उक्तियाँ भी दी हैं। हिन्दी में कवि बिहारी ने भी इन्हीं सप्तशतियों के अनुकरण पर अपनी सतसई की रचना की थी। इस प्रकार छोटे छन्द में श्रृङ्गार का पूरा चित्र खींचने का प्रयास जो हाल कवि ने किया, उसकी लम्बी परम्परा चली।

अन्य काव्यग्रन्थ

संस्कृत भाषा में कुछ अन्य प्रकार की पद्यात्मक रचनाएँ मिलती हैं, जिन्हें गीतिकाव्य, नीतिकाव्य तथा उपदेशपरक काव्यों में रखा जाता है। इनमें कालिदास के नाम से प्रसिद्ध श्रृङ्गारतिलक तेईस श्लोकों का काव्य है, जो प्रेम के रमणीय चित्रों से भरा है। इसमें अमरुकवि के भाव झलकते हैं। दूसरा काव्य **घटकर्परकाव्य** है, जो बाईस श्लोकों में यमक के प्रयोगों से भरा है। इसलिए इसे यमककाव्य भी कहते हैं।

संस्कृत भाषा में नैतिक सूक्तियों के कई संग्रह मिलते हैं, जैसे– **राजनीतिसमुच्चय, चाणक्यनीतिदर्पण, नीतिसार, नीतिप्रदीप** इत्यादि। दामोदर भट्ट (800 ई.) ने **कुट्टनीमत** नामक व्यंग्य ग्रन्थ लिखा, जिसमें पाठकों को सांसारिक नीति के विषय में शिक्षा दी गई है। क्षेमेन्द्र ने **समयमातृका, नर्ममाला, कलाविलास, दर्पदलन, सेव्यसेवकोपदेश, चतुर्वर्ग-संग्रह** इत्यादि ग्रन्थों में हास्य-व्यंग्यपूर्ण शैली में समकालिक जीवन का चित्र खींचा है। वैद्य, स्वर्णकार, ज्यौतिषी, औषध-विक्रेता आदि पर उन्होंने अच्छी चुटकी ली है।

इस प्रकार संस्कृत भाषा में अनेक प्रकार की पद्य रचनाएँ प्राप्त होती हैं, जो पाठकों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करने में सहायता देती हैं। इनका अनुशीलन आज भी आनन्ददायक तथा शिक्षाप्रद है।

श्लेषकाव्य

श्लिष्ट काव्य या अनेकार्थक काव्यों की एक परम्परा ग्यारहवीं शताब्दी से चली आ रही है। इनमें श्लिष्ट पदावली के प्रयोग से एक ही काव्य में दो या अधिक कथाएँ एक साथ चलती हैं। इस प्रकार के काव्यों में सन्ध्याकरनन्दिन्

का **रामचरित**, धनञ्जय का **राघवपाण्डवीय** प्राचीन तथा महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसे कुछ अन्य प्रमुख काव्य हैं– विद्यामाधव (12वीं शताब्दी) कृत **पार्वतीरुक्मिणीय**, माधवभट्ट (12वीं शताब्दी) कृत **राघवपाण्डवीय**, दैवज्ञसूर्य (16वीं शताब्दी) कृत **रामकृष्णविलोमकाव्य**, हरदत्तसूरि (16वीं शताब्दी) कृत **राघवनैषधीय**, चिदम्बर कवि (17वीं शताब्दी) कृत **राघवपाण्डवयादवीय** एवं वेंकटाध्वरि (17वीं शताब्दी) कृत **यादवराघवीय**।

संस्कृत कवयित्रियाँ

संस्कृत साहित्य में आरम्भकाल से ही कवयित्रियों का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में ऋषिकाओं के अनेक मन्त्र संगृहीत हैं, जो काव्य की दृष्टि से अत्यन्त उच्च कोटि के हैं। लौकिक साहित्य में भी अनेक कवयित्रियों के नामों का उल्लेख प्राचीन कवियों के प्रशस्ति पद्यों में हुआ है तथा काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों एवं सुभाषितावली, सूक्तिमुक्तावली, शार्ङ्गधरपद्धति आदि सुभाषित-संकलनों में इनकी कविताएँ संगृहीत हैं। इनमें विज्जका, सुभद्रा, फल्गुहस्तिनी, इन्दुलेखा, मारुला, विकटनितम्बा, शीलाभट्टारिका के नाम प्रमुख हैं। कवयित्रियों ने मुक्तक तथा प्रबन्धात्मक दोनों प्रकार की रचनाएँ की हैं। इनमें रामभद्राम्बाविरचित **रघुनाथाभ्युदय**, तिरुमलाम्बाकृत **वरदाम्बिकापरिणयचम्पू** एवं गंगादेवीकृत **वीरकम्परायचरित** तथा **मधुराविजय** प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य हैं। बीसवीं शताब्दी में पण्डिता क्षमाराव, पुष्पादीक्षित, श्रीमती श्रीदेवीकुट्टी ताम्पुराइ, देवकी मेनन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सारांश

संस्कृत साहित्य में बहुत-सी पद्य रचनाएँ ऐसी हैं, जिन्हें महाकाव्य न कहकर खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, मुक्तक आदि नामों से कहा जाता है।

- ***खण्डकाव्य** : छोटे कथानक वाले काव्य को खण्डकाव्य कहा जाता है। ऋतुसंहार, मेघदूत संस्कृत में उत्कृष्ट खण्डकाव्य हैं।*
- ***ऋतुसंहार** : यह कालिदास की रचना है। इनमें छह सर्ग हैं। इसमें छहों ऋतुओं का काव्यमय तथा शृङ्गारपूर्ण वर्णन किया गया है।*
- ***मेघदूत** : यह कालिदास की रचना है। इसके दो भाग हैं– पूर्वमेघ और उत्तरमेघ। इसमें कुल 120 श्लोक हैं। इसमें एक ऐसे यक्ष की विरह-व्यथा का वर्णन है, जो एक वर्ष के लिए अपनी पत्नी से वियुक्त कर दिया जाता है। वर्षा*

ऋतु में मेघ को दूत बनाकर अपना सन्देश वह अपनी पत्नी के पास भेजता है। उसकी पत्नी अलकापुरी में रहती है और यक्ष रामगिरि में रह रहा है।

पूर्वमेघ में रामगिरि से अलकापुरी तक मेघ के मार्ग का रोचक वर्णन है। उत्तरमेघ में अलकापुरी का वर्णन, यक्ष के भवन और उसके मार्मिक सन्देश का वर्णन है।

मेघदूत परवर्ती संस्कृत कवियों का दूतकाव्य लिखने में प्रेरणास्रोत रहा।

- ***गीतिकाव्य** : संस्कृत में गीतिकाव्य की समृद्ध परम्परा रही है। गीतिकाव्यों में विरह, भक्ति या शृङ्गार-सम्बन्धी गीत होते हैं। इसका क्षेत्र व्यापक होता है।*
- ***गीतिगोविन्द** : इसके लेखक जयदेव हैं। जयदेव बंगाल के राजा लक्ष्मणसिंह की राजसभा में रहते थे। इस काव्य में राधाकृष्ण के प्रेम का वर्णन है। इसमें 12 सर्ग हैं। संस्कृत के गीतकाव्यों में यह श्रेष्ठ है।*
- ***चौरपञ्चाशिका** : इसके रचयिता बिल्हण हैं। इसमें पचास श्लोक हैं, जिनमें किसी राजकुमारी से कवि के गुप्त प्रेम का वर्णन है। किंवदन्ती के अनुसार कवि का नाम चौर है। इस काव्य के सभी श्लोक वसन्ततिलका छन्द में हैं।*
- ***मुक्तककाव्य** : मुक्तककाव्य भी गीति के रूप में होते हैं, किन्तु इनका प्रत्येक श्लोक स्वतन्त्र तथा चमत्कारी होता है।*
- ***भर्तृहरि के शतकत्रय** : भर्तृहरि ने अपने अनुभवों के आधार पर तीन शतक बनाए। उनके नाम हैं– शृङ्गारशतक, नीतिशतक और वैराग्यशतक। प्रत्येक शतक में सौ-सौ श्लोक हैं। शृङ्गारशतक में काम और विलास का वर्णन है।*
- ***नीतिशतक** में विद्या, वीरता, सज्जनता आदि उदार वृत्तियों का वर्णन है तथा मूर्खता, लोभ, दुर्जनता आदि दुर्गुणों की निन्दा की गई है।*
- ***वैराग्यशतक** में संसार की असारता और वैराग्य की आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है। इनमें अनेक छन्दों का प्रयोग किया गया है। भर्तृहरि का समय सातवीं शताब्दी माना जाता है।*
- ***अमरुशतक** : अमरुशतक संस्कृत गीतिकाव्यों में अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसके रचयिता अमरु कवि हैं। इसमें डेढ़ सौ श्लोक मिलते हैं। अमरुशतक का सर्वप्रथम उल्लेख आनन्दवर्धन ने (850 ई.) किया है। इसके श्लोक शृङ्गारपूर्ण हैं। इसमें शार्दूलविक्रीडित छंद का विपुल प्रयोग किया गया है।*

  सत्रहवीं शताब्दी में पण्डितराज जगन्नाथ ने अनेक रमणीय श्लोकों वाले भामिनीविलास नामक गीतिकाव्य की रचना की।
- ***स्तोत्रकाव्य** : भक्तिप्रधान गीतिकाव्यों को स्तोत्रकाव्य कहते हैं। वैदिक-काल से लेकर आज तक स्तोत्रकाव्य लिखे जाते रहे हैं। पुष्पदन्त ने शिखरिणी छंद*

में शिव की स्तुति में शिवमहिम्नः स्तोत्र लिखा है। मयूरभट्ट ने स्रग्धरा छंद में सूर्यशतक नामक स्तोत्रकाव्य लिखा है। शंकराचार्य ने भजगोविन्दम्, सौन्दर्यलहरी आदि अनेक स्तोत्र काव्य लिखे हैं।

- ***प्राकृतकाव्य** : संस्कृत गीतियों की भाँति प्राकृत गीतिकाव्य का भी विकास हुआ है। इसमें हाल कवि की गाथासप्तशती बहुत प्रसिद्ध है। इसमें कृषक, गोपालक, उद्यान में खेलने वाली कन्याएँ, बधिक आदि चित्रित हैं। इस प्रकार इसमें सामान्य लोकजीवन का चित्रण किया गया है। गाथासप्तशती के अनुकरण पर गोवर्धनाचार्य ने संस्कृत में आर्यासप्तशती की रचना की है। इसमें आर्या छन्द में लिखे गए सात सौ श्लोक हैं। यह शृङ्गारप्रधान काव्य है।*
- ***अन्य काव्य ग्रन्थ** : संस्कृत भाषा में कुछ अन्य प्रकार की पद्यात्मक रचनाएँ मिलती हैं, जिन्हें गीतिकाव्य तथा उपदेशपरक काव्यों में रखा जा सकता है। इसमें कालिदास के नाम से प्रसिद्ध तेईस श्लोकों का शृङ्गारतिलक तथा बाईस श्लोकों का घटकर्परकाव्य मुख्य है।*

संस्कृत भाषा में नैतिक सूक्तियों के संग्रह के रूप में राजनीतिसमुच्चय, चाणक्य-नीतिदर्पण, नीतिसार, नीतिप्रदीप आदि उपलब्ध होते हैं।

दामोदर भट्ट (800 ई.) का कुट्टनीमत नामक व्यंग्यकाव्य, क्षेमेन्द्र की समयमातृका, कलाविलास, दर्पदलन आदि ग्रन्थ भी आज उपलब्ध हैं, जिनमें तत्कालीन जीवन का चित्र खींचा गया है।

- *संस्कृत साहित्य में राघवपाण्डवीय आदि श्लेष काव्यों की परम्परा भी है, जिनमें प्रत्येक श्लोक के दो या अधिक अर्थ देते हुए अनेक कथाएँ साथ-साथ चलती हैं।*

संस्कृत साहित्य में स्त्रियों ने भी महत्त्वपूर्ण-काव्यरचनाएँ की हैं। वैदिक मन्त्रों की ऋषिकाओं के अतिरिक्त मध्यकाल में विज्जका, गंगादेवी आदि तथा आधुनिक युग में पण्डिता क्षमाराव आदि प्रसिद्ध कवयित्रियाँ रही हैं।

इस प्रकार संस्कृत-भाषा में अनेक प्रकार की पद्य-रचनाएँ प्राप्त होती हैं, जो पाठकों को धर्मादि पुरुषार्थ-चतुष्टय प्राप्त करने में सहायता देती हैं।

अभ्यास-प्रश्न

1. महाकाव्य के अतिरिक्त पद्य रचनाएँ काव्य की किन विधाओं में आती हैं?
2. खण्डकाव्य किसे कहते हैं? दो खण्डकाव्यों के नाम लिखिए।

3. मेघदूत के रचयिता कौन हैं? यह ग्रन्थ कितने भागों में विभक्त है?
4. मेघदूत में किस छन्द का प्रयोग हुआ है?
5. संस्कृत भाषा में मेघदूत के अनुकरण पर कैसे काव्यों की परंपरा चल पड़ी? उनमें से तीन के नाम लिखिए।
6. गीतिकाव्य किसे कहते हैं? इसमें किस प्रकार के गीत होते हैं?
7. गीतगोविन्द के रचयिता कौन थे? उनका स्थितिकाल क्या था?
8. चौरपञ्चाशिका के लेखक कौन हैं? यह किस प्रकार का काव्य है?
9. मुक्तक काव्यों की क्या विशेषता है?
10. भर्तृहरि ने कितने शतकों की रचना की? उनके नाम लिखिए।
11. नीतिशतक में कवि ने किन बातों का वर्णन किया है?
12. वैराग्यशतक में किन भावों का समावेश किया गया है?
13. अमरुशतक का उल्लेख सर्वप्रथम किसने किया है? और कब?
14. अमरुशतक में कितने श्लोक मिलते हैं?
15. पण्डितराज जगन्नाथ के श्लोकों का संग्रह किस ग्रन्थ में हुआ है?
16. स्तोत्रकाव्य काव्य की किस श्रेणी में आते हैं?
17. शंकराचार्य के प्रसिद्ध स्तोत्र का नाम लिखिए।
18. गाथासप्तशती किस भाषा में रचित है? इसके रचयिता का नाम भी लिखिए?
19. गाथासप्तशती में किन बातों का वर्णन हुआ?
20. आर्यासप्तशती के लेखक कौन हैं? इसकी रचना किस भाषा में हुई है?
21. नीतिकाव्यों के नाम लिखिए और उनके लेखकों के नाम भी दीजिए।
22. दो श्लेषकाव्यों तथा उनके लेखकों के नाम लिखिए।
23. एक प्राचीन तथा एक आधुनिक कवयित्री का नाम दीजिए।
24. रिक्त स्थान भरिए—
    (क) भर्तृहरि .... शताब्दी में हुए थे।
    (ख) सर्व प्रियं .... वसन्ते।
    (ग) यक्ष स्वयं .... में प्रवास कर रहा था।
    (घ) गीतिकाव्य का क्षेत्र बहुत .... है।
    (ङ) वैद्य, स्वर्णकार, ज्यौतिषी, औषधि-विक्रेता पर .... ने अच्छी चुटकी ली है।

सप्तम अध्याय

गद्य-काव्य

संस्कृत गद्य का आरम्भ ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषदों के गद्य में देखा जा सकता है। बहुत दिनों तक सरल स्वाभाविक शैली में गद्य लिखने की परम्परा चलती रही। पद्य-काव्य के विकास के साथ-साथ गद्य में भी काव्य के उपादानों को प्रविष्ट कराने की प्रवृत्ति पनपी। आरम्भिक शताब्दियों में शिलालेखों के रूप में गद्य-काव्य प्राप्त होता है। इस दृष्टि से रुद्रदामन् का गिरिनार-शिलालेख (150 ई.) तथा हरिषेण-रचित समुद्रगुप्त-प्रशस्ति (360 ई.) महत्त्वपूर्ण हैं। ये दोनों गद्यकाव्य के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। संस्कृत में गद्य-काव्य की रचना बहुत कम हुई। ऐसे काव्य को स्मरण रखने का श्रम, आलोचकों की उपेक्षा और गद्य-काव्य का ऊँचा मानदण्ड-इन तीनों के कारण कविगण गद्यकाव्य-रचना की ओर अभिमुख नहीं होते थे। गद्य रचना के सन्दर्भ में यह उक्ति भी प्रसिद्ध है– **गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।** कदाचित् इसीलिए गद्य-रचना संस्कृत भाषा में कम हुई। प्रायः छठी-सातवीं शताब्दी ई. में कुछ महत्त्वपूर्ण गद्य-कवि हुए, जैसे– **दण्डी, सुबन्धु** और **बाण**।

दण्डी

दण्डी ने **दशकुमारचरित** के रूप में एक अद्भुत कथा-काव्य दिया है। दण्डी का समय विवादास्पद है, किन्तु अधिकांश विद्वान् इनका काल छठी शताब्दी मानते हैं। परम्परा से दण्डी के तीन ग्रन्थ प्रामाणिक माने जाते हैं। इनमें दूसरा ग्रन्थ **काव्यादर्श** है, तीसरा ग्रन्थ **अवन्तिसुन्दरीकथा** है। इस तीसरे ग्रन्थ के रचयिता के विषय में कुछ विवाद है। **दशकुमारचरित** भी बहुत विकृत रूप में मिलता है। इसके तीन भाग प्राप्त हैं– पूर्वपीठिका (पाँच उच्छ्वास), मूलभाग (आठ उच्छ्वास) तथा उत्तरपीठिका (एक उच्छ्वास)। मूलभाग में

आठ कुमारों की कथा का वर्णन है। पूर्वपीठिका को मिलाकर दस कुमारों की कथा पूरी हो जाती है। तीनों भागों की शैली में थोड़ा भेद दिखाई पड़ता है।

दशकुमारचरित का कथानक घटना-प्रधान है जिसमें अनेक रोमांचक घटनाएँ पाठकों को विस्मय और विषाद के बीच ले जाती हैं। कहीं भयंकर जंगल में घटनाक्रम पहुँचता है, तो कहीं समुद्र में जहाज टूटने पर कोई तैरता हुआ मिलता है। घटनाएँ और वर्णन दोनों ही समान रूप से दण्डी के लिए महत्त्व रखते हैं। विषयवस्तु कहीं भी वर्णनों के क्रम में दबती नहीं। जिस समाज का चित्र दण्डी खींचते हैं, वह अत्यंत सामान्य है, जिसमें निम्न कोटि का जीवन बिताने वाले धूर्त, जादूगर, चालाक चोर, तपस्वी, सिंहासनच्युत राजा, पतिवंचक नारी, ठगने वाली वेश्याएँ, ब्राह्मण, व्यापारी और साधु-ये सभी हैं। दण्डी का हास्य और व्यंग्य भी उच्च कोटि का है। वे सरल विषयों पर परिहास-मुद्रा में और दुःखान्त या महत्त्वपूर्ण विषयों पर गंभीर मुद्रा में लेखनी चलाते हैं।

दण्डी की सबसे बड़ी विशेषता सरल और व्यावहारिक किन्तु ललित पदों से युक्त गद्य लिखने में है। वे लम्बे समासों, कठोर ध्वनियों और शब्दाडम्बर से दूर रहते हैं। भाषा के प्रयोग में ऐसी स्वाभाविकता किसी अन्य गद्य-कवि में नहीं मिलती। दण्डी का पद-लालित्त्य संस्कृत आलोचकों में विख्यात है– **दण्डिनः पदलालित्त्यम्**। दशकुमारचरित की विषयवस्तु भी किसी आधुनिक रोमांचकारी उपन्यास से कम रोचक नहीं है।

सुबन्धु

बाणभट्ट ने हर्षचरित की प्रस्तावना में वासवदत्ता को कवियों का दर्पभंग करने वाली रचना कहा है। इसी प्रकार कादम्बरी को उन्होंने दो कथाओं (वासवदत्ता तथा बृहत्त्कथा) से उत्त्कृष्ट कहा है। इससे ज्ञात होता है कि सुबन्धु बाण से पहले हो चुके थे। वासवदत्ता सुबन्धु की उत्त्कृष्ट गद्य-रचना है। इसमें कथानक बहुत संक्षिप्त है। राजकुमार कन्दर्पकेतु स्वप्न में अपनी भावी प्रियतमा को देखता है और अपने मित्र के साथ उसकी खोज में निकल जाता है। वह विन्ध्याटवी में एक मैना के मुख से वासवदत्ता का वृत्तान्त सुनता है। उधर वासवदत्ता भी स्वप्न में कन्दर्पकेतु को देखकर उसके प्रति प्रेमासक्त हो जाती है। दोनों पाटलिपुत्र में मिलते हैं। प्रेमी-युगल जादू के घोड़े पर

चढ़कर भाग जाते हैं और विध्याचल में पहुँचकर सो जाते हैं। राजकुमार जब जागता है, तब वासवदत्ता को नहीं पाता। बहुत ढूंढ़ने के बाद वह एक प्रतिमा को देखता है। स्पर्श करते ही वह प्रतिमा वासवदत्ता बन जाती है। बाद में दोनों का विवाह हो जाता है।

इस संक्षिप्त कथानक को विस्तृत वर्णन और कल्पना शक्ति से सुबन्धु बहुत फैलाते हैं। उनका लक्ष्य रोचक और सरस कथा का आख्यान नहीं है, अपितु वे वर्णन-कौशल से चमत्त्कार उत्त्पन्न कर गौरव अर्जित करना चाहते हैं। नायक-नायिका के रूप का वर्णन करने में, उनके गुण-गान में, उनकी तीव्र विरह-वेदना, मिलन की आकांक्षा और संयोग-दशा के चित्रण में सुबन्धु ने पर्याप्त शक्ति लगाई है। इस कार्य में सुबन्धु के व्यापक अनुभव तथा पाण्डित्त्य ने बड़ी सहायता की है।

सुबन्धु अपने श्लेष के प्रयोग पर बहुत गर्व करते हैं। वे इस कथा के अक्षर-अक्षर में श्लेष भरने का दावा करते हैं। अन्य अलंकारों का भी उन्होंने प्रचुर प्रयोग किया है। यत्र-तत्र पद्यों का प्रयोग करके अपनी शैली को उन्होंने बहुत रोचक बनाया है। वासवदत्ता वास्तव में सुबन्धु की शैली का चमत्त्कार दिखाने का सुन्दर अवसर देती है। लम्बे समासों का प्रयोग तथा अनुप्रासों का अत्त्यधिक उपयोग सुबन्धु की शैली की विशेषता है। समासों में स्वरमाधुर्य है और अनुप्रासों में संगीत है। अपने युग के अनुरूप उन्होंने चमत्त्कार-प्रदर्शन किया है।

बाणभट्ट

संस्कृत गद्य-साहित्त्य में सर्वाधिक प्रतिभाशाली गद्यकार बाण ही हैं। इनके विषय में अन्य संस्कृत-कवियों की अपेक्षा अधिक जानकारी प्राप्त होती है। हर्षचरित के आरम्भ में इन्होंने अपना और अपने वंश का पूरा विवरण दिया है। ये वात्स्यायन-गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम चित्रभानु था। अल्पावस्था में ही ये अनाथ हो गए थे। किंतु विद्वानों के परिवार में जन्म लेने के कारण इन्होंने सभी विद्याओं का अभ्यास किया था। युवावस्था में अनेक कलाओं और विद्याओं के जानकार मित्रों की मण्डली बनाकर इन्होंने पर्याप्त देशाटन किया था। जब अनेक अनुभवों से सम्पन्न होकर बाण अपने ग्राम प्रीतिकूट (शोण के तट पर) लौटे, तो हर्षवर्धन ने अपने अनुज कृष्ण के द्वारा

इन्हें अपनी राजसभा में बुलाया। बाण राजकृपा से हर्ष की सभा में रहने लगे। हर्षवर्द्धन का समय 607 ई. से 648 ई. है इसलिए बाण का भी यही समय होना चाहिए।

बाण ने दो गद्यकाव्य लिखे– **हर्षचरित** तथा **कादम्बरी**। परम्परा बाणभट्ट को **चण्डीशतक** का भी लेखक मानती है।

- **हर्षचरित :** हर्षचरित एक आख्यायिका-काव्य है। गद्यकाव्य के उस भेद को आख्यायिका कहते हैं, जिसमें किसी ऐतिहासिक पुरुष या घटनाओं का वर्णन किया जाता है। हर्षचरित आठ उच्छ्वासों में विभक्त है। आरम्भिक ढाई उच्छ्वासों में बाण ने अपने वंश का तथा अपना वृत्तान्त दिया है। राजा हर्षवर्द्धन की पैतृक राजधानी स्थाण्वीश्वर का वर्णन कर वे हर्षवर्द्धन के पूर्वजों का वर्णन करते हैं। इसके बाद राजा प्रभाकरवर्द्धन के पूरे जीवन का विवरण देकर वे राज्यवर्द्धन, हर्षवर्द्धन तथा राज्यश्री- इन तीनों भाई-बहन के जन्म का भी रोचक वृत्तान्त देते हैं। पंचम उच्छ्वास से इस परिवार के संकटों का आरम्भ होता है। प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु, राज्यश्री का विधवा होना, राज्यवर्द्धन की हत्त्या, राज्यश्री का विन्ध्याटवी में पलायन, हर्षवर्द्धन द्वारा उसकी रक्षा– ये सभी घटनाएँ क्रमशः वर्णित हैं। दिवाकरमित्र नामक बौद्ध संन्यासी के आश्रम में हर्षवर्द्धन व्रत लेता है कि दिग्विजय के बाद वह बौद्ध हो जाएगा। यहीं हर्षचरित का कथानक समाप्त हो जाता है।

बाण ने हर्ष की प्रारंभिक जीवनी ही लिखी, उसके राज्य संचालन की घटनाओं का उल्लेख नहीं किया है। बाण की भेंट हर्ष से तब हुई थी, जब हर्ष समस्त उत्तर-भारत का सम्राट् था। इसलिए यह समस्या बनी हुई है कि बाण ने हर्ष का पूरा जीवनचरित क्यों नहीं लिखा। उन्होंने हर्षवर्द्धन की विशेषताएँ तो बतलाई हैं, उसके साहसिक कार्यों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन भी प्रारम्भ में ही किया है, किन्तु उसके राज्यकाल की प्रमुख घटनाओं का क्रमबद्ध रूप से उन्होंने वर्णन क्यों नहीं किया? इतिहास का संक्षिप्त रूप यहाँ काव्य के विशाल आवरण से ढँक गया है।

बाणभट्ट अपने समस्त पाण्डित्य तथा व्यापक अनुभव की दृढ़ सामग्री के साथ इस गद्य-काव्य में विद्यमान हैं। विस्तृत वर्णन, सजीव संवाद, सुन्दर उपमाएँ, झंकार करती शब्दावली तथा रसों की स्पष्ट अभिव्यक्ति– ये सब

बातें बाण की गद्य-शैली में प्रचुर रूप में प्राप्त होती हैं। राज्यश्री के विवाह-वर्णन में जहाँ आनन्द और उल्लास का सजीव विवरण मिलता है, वहीं प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु अत्यन्त मार्मिक रूप से वर्णित है।

- **कादम्बरी** : यह कवि-कल्पित कथानक पर आश्रित होने के कारण कथा नामक गद्य-काव्य है। उच्छ्वास, अध्याय आदि में इसका विभाजन नहीं किया गया है। पूरी कथा का दो-तिहाई भाग ही बाण ने लिखा। इसका एक तिहाई भाग उनके पुत्र ने लिखकर जोड़ा, जो अपने पिता के अपूर्ण ग्रन्थ से दुःखी था। कादम्बरी की कथा एक जन्म से सम्बद्ध न होकर चन्द्रापीड (नायक) तथा पुण्डरीक (उसका मित्र) के तीन जन्मों से सम्बन्ध रखती है। आरम्भ में विदिशा के राजा शूद्रक का वर्णन है। उसकी राजसभा में चाण्डाल-कन्या वैशम्पायन नामक एक मेधावी तोते को लेकर आती है। यह तोता राजा को अपने जन्म और जाबालि के आश्रम में अपने पहुँचने का वर्णन सुनाता है। जाबालि ने तोते को उसके पूर्व जन्म की कथा सुनाई थी। तदनुसार राजा चन्द्रापीड और उसके मित्र वैशम्पायन की कथा आती है। चन्द्रापीड दिग्विजय के प्रसंग में हिमालय में जाता है, जहाँ अच्छोद सरोवर के निकट महाश्वेता के अलौकिक संगीत से आकृष्ट होता है। वहाँ कादम्बरी से उसकी भेंट होती है और वह उसके प्रति आसक्त हो जाता है। महाश्वेता एक तपस्वी कुमार पुण्डरीक के साथ अपने अधूरे प्रेम की कहानी सुनाती है। उसी समय चन्द्रापीड़ अपने पिता तारापीड के द्वारा उज्जैन बुला लिया जाता है, किन्तु वह वियोगजन्य व्यथा से पीड़ित रहता है। पत्रलेखा से कादम्बरी का समाचार सुनकर वह प्रसन्न होता है। यहीं बाण की कादम्बरी समाप्त हो जाती है। महाश्वेता वैशम्पायन को तोता बनने का शाप देती है। यह वैशम्पायन चन्द्रापीड का मित्र है, शाप के बाद वह मर जाता है। इससे चन्द्रापीड भी दुःखी होकर मर जाता है। महाश्वेता तथा कादम्बरी राजकुमार के शरीर की रक्षा करती हैं। अंत में सभी को जीवन प्राप्त होता है।

कादम्बरी में कथा को ही नहीं, वर्णनों को भी बाण ने अपनी कल्पनाशक्ति से फैलाया है। इसमें सभी स्थल बाण की लोकोत्तर शक्ति तथा वर्णन-क्षमता का परिचय देते हैं। काव्यशास्त्र के सभी उपादानों (रस, अलंकार, गुण, रीति)

का औचित्यपूर्ण प्रयोग करने के कारण कादम्बरी बाण की उत्कृष्ट गद्य रचना है। इसमें विषय की आवश्यकता के अनुसार वर्णनशैली अपनाई गई है। इसलिए उनकी शैली को पांचाली कहा जाता है, जिसमें शब्द और अर्थ का समान गुम्फन होता है। बाण ने पात्रों का सजीव निरूपण किया है, रस का समुचित परिपाक दिखाया है और मानव-जीवन के सभी पक्षों पर दृष्टि रखी है। इसलिए आलोचकों ने एक स्वर से कहा है कि बाण ने पूरे संसार को जूठा कर दिया है **(बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्)**। उनके वर्णन से कुछ भी नहीं बचा है। कादम्बरी में मन्त्री शुकनास ने राजकुमार चन्द्रापीड को जो विस्तृत उपदेश दिया है, वह आज भी तरुणों के लिए मार्गदर्शक है।

अम्बिकादत्त व्यास

- **शिवराजविजय** : एक आधुनिक गद्य काव्य है, जो महान् देशभक्त शिवाजी के जीवन की प्रमुख घटनाओं पर आश्रित आधुनिक उपन्यास की शैली में लिखा गया है। इसके लेखक पं. अम्बिकादत्त व्यास (1858-1900 ई.) हैं। व्यास जी मूलतः जयपुर (राजस्थान) के निवासी थे, किन्तु उनका कार्यक्षेत्र बिहार था। शिवराजविजय का कथानक ऐतिहासिक है, जिसमें कवि ने कल्पना का भी प्रचुर प्रयोग किया है। इससे घटनाएँ गतिशील और प्रभावशाली हो गई हैं। व्यास जी की भाषा-शैली में प्रसादगुण, कथा-प्रवाह और कल्पना की विशदता मिलती है। विषयवस्तु की दृष्टि से यह गद्यकाव्य शिवाजी और औरंगजेब के संघर्ष की घटनाओं पर आश्रित है। यशवन्त सिंह, अफजल खाँ आदि कई ऐतिहासिक पात्रों को इसमें चित्रित किया गया है। शिवाजी भारतीय आदर्श, संस्कृति तथा राष्ट्रशक्ति के रक्षक के रूप में दिखाए गए हैं। उनका ऐतिहासिक व्यक्तित्त्व इस गद्य-काव्य में पूर्णतः सुरक्षित है। इसमें जहाँ-तहाँ फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। पूरी रचना बारह निःश्वासों में विभक्त है। यह आधुनिक गद्य-साहित्त्य का गौरवग्रन्थ है।

अन्य गद्य-काव्य

संस्कृत भाषा में गद्य-रचना कम हुई है, फिर भी विभिन्न कालों में कवियों ने अपना कौशल गद्य-काव्य की रचना में दिखाया है। इन सभी में प्रायः बाण के अनुकरण की प्रवृत्ति है। धारा के जैन कवि धनपाल (दसवीं शताब्दी ई.)

ने **तिलकमञ्जरी** लिखकर बाण की परम्परा का अनुकरण किया। वे बाण के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करते हैं। गुजरात-निवासी सोड्ढल (11वीं शताब्दी ई.) ने **उदयसुन्दरीकथा** आठ उच्छ्वासों में लिखी, जो कल्पित कथानक पर आश्रित है। आधुनिक काल में पण्डिता क्षमाराव (1890-1954 ई.) का नाम गद्य लेखकों में अग्रणी है। उन्होंने **कथामुक्तावली**, **विचित्रपरिषद्यात्रा** इत्यादि कई गद्य-काव्य लिखे हैं।

सारांश

संस्कृत गद्यकाव्य का आरम्भ ब्राह्मण तथा उपनिषद् ग्रन्थों से हुआ है। पद्य-काव्य की तुलना में गद्य-काव्य की रचना कम मात्रा में हुई है। दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट महत्त्वपूर्ण गद्य-कवि हुए हैं, जिनका समय छठी-सातवीं शताब्दी माना जाता है।

- ***दण्डी** : दण्डी ने दशकुमारचरित नामक कथा-काव्य की रचना की है। इसके अतिरिक्त काव्यादर्श और अवन्तिसुन्दरीकथा भी उनकी रचनाएँ मानी जाती हैं। दशकुमारचरित में दस कुमारों की कथा वर्णित हुई है। दण्डी ने अपने गद्य की रचना सरल और रोचक शैली में की है। दशकुमारचरित की कथा रोमांचकारी उपन्यास की तरह रोचक है।*
- ***सुबन्धु** : सुबन्धु ने वासवदत्ता नामक गद्य-काव्य की रचना की है। इसमें राजकुमार कन्दर्पकेतु और राजकुमारी वासवदत्ता का प्रणय चित्रित है। वासवदत्ता में सर्वत्र श्लेष के द्वारा कवि ने अनेक अर्थों को रखकर अपने काव्य को चमत्कारपूर्ण बनाया है।*
- ***बाणभट्ट** : संस्कृत गद्य -साहित्य में बाणभट्ट सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कवि हैं। ये राजा हर्षवर्द्धन (607 ई. से 648 ई.) की राजसभा के कवि थे। इनका जन्म शोण नद के तट पर प्रीतिकूट ग्राम में हुआ था। बाणभट्ट ने दो गद्यकाव्य लिखे - हर्षचरित और कादम्बरी। हर्षचरित एक आख्यायिका है, जिसके आरम्भिक अंश में बाणभट्ट ने अपना विस्तृत परिचय दिया है और बाद के अंश में हर्ष का चरित्र चित्रित हुआ है। कादम्बरी कथा है, जिसमें नायक चन्द्रापीड और नायिका कादम्बरी की काल्पनिक कथा वर्णित है। कादम्बरी बाण की उत्कृष्ट गद्य-रचना है।*
- ***शिवराजविजय** : शिवराजविजय आधुनिक गद्य काव्य है, जो शिवाजी के जीवन को चित्रित करने वाला उपन्यास है। इसके लेखक पं. अम्बिकादत्तव्यास (1858 ई.-1900 ई.) हैं। व्यास जी मूलतः जयपुर के निवासी थे, परन्तु उनका कार्य क्षेत्र बिहार था।*

इनके अतिरिक्त संस्कृत में अनेक गद्य-काव्य लिखे गए हैं। धनपाल (दसवीं शताब्दी ई.) की तिलकमञ्जरी, सोड्ढल (11वीं शताब्दी ई.) की उदय-सुन्दरीकथा, क्षमाराव (1890-1954 ई.) की कथामुक्तावली आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अभ्यास-प्रश्न

1. संस्कृत भाषा में गद्य-काव्य की रचनाएँ कम होने के क्या कारण हैं?
2. छठी शताब्दी के कुछ महत्त्वपूर्ण गद्य-कवियों के नाम लिखिए।
3. दण्डी के काव्य की कौन-सी विशेषता प्रसिद्ध है?
4. दशकुमारचरित का लेखक कौन है?
5. दण्डी ने अपने काव्य में किन-किन सामान्य चरित्रों के आधार पर समाज का चित्र खींचा है?
6. वासवदत्ता किसकी रचना है?
7. वासवदत्ता का कथानक पचास शब्दों में लिखिए।
8. बाणभट्ट किस राजा की राजसभा में रहते थे?
9. हर्षचरित तथा कादम्बरी किस लेखक की रचनाएँ हैं?
10. आख्यायिका की विशेषताएँ बताइए।
11. हर्षचरित के नामकरण की सार्थकता बताइए।
12. बाण की गद्य-शैली की क्या विशेषता है?
13. कादम्बरी का नायक कौन है?
14. कादम्बरी का कथानक पचास शब्दों में लिखिए।
15. "बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्!" इसका आशय क्या है?
16. शिवाजी के जीवन की प्रमुख घटनाओं पर लिखित संस्कृत में कौन-सा गद्य काव्य है?
17. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए–

    (क) संस्कृत गद्य का आरम्भ .... ग्रन्थों और .... से माना जाता है।

    (ख) संस्कृत गद्य साहित्य में सर्वाधिक प्रतिष्ठित और प्रतिभाशाली गद्यकार .... ही हैं।

    (ग) बाणभट्ट के पिता का नाम .... था।

(घ) सुबन्धु अपने काव्य में .... अलंकार के प्रयोग पर बहुत गर्व करते थे।

(ङ) शिवराज विजय में यत्र-तत्र .... के शब्दों का प्रयोग किया गया है।

18. गद्य-काव्यों और कवियों को मिलाइए–

गद्यकाव्य	*कवि*
उदयसुन्दरीकथा	धनपाल
तिलकमंजरी	सोड्ढल
कथामुक्तावली	पण्डिता क्षमाराव

अष्टम अध्याय

नीतिकथा और लोककथा

संस्कृत भाषा में बहुत आरंभ से ही नीतिकथाओं और लोकथाओं का साहित्य लिखा जाता रहा है। कथा के द्वारा बालकों को शिक्षित करने एवं जन-सामान्य का मनोरंजन करने की प्रवृत्ति सभी देशों में रही है। प्राचीन भारत में भी कथा के माध्यम से बालकों की कल्पना-शक्ति को बढ़ाने का प्रयास किया गया है। मनोरंजन के विविध माध्यमों में कथा कहना और सुनना बहुत समर्थ तथा शक्तिशाली साधन है। ब्राह्मण-ग्रन्थों, उपनिषदों, बौद्ध-जातकों तथा पुराणों में अनेक कथाएँ दी गई हैं, जिनमें शिक्षा और मनोरंजन दोनों उद्देश्य पूरे होते हैं। भारत का प्राचीनतम कथासंग्रह पञ्चतन्त्र है। उसके बाद कथा-साहित्य की अविच्छिन्न परंपरा चलती आ रही है।

पञ्चतन्त्र

पञ्चतन्त्र में पशु-पक्षियों तथा मनुष्यों को भी पात्र बनाकर कथाएँ कही गई हैं। इन कथाओं में कला का अभाव है, किन्तु उपदेश देने की अद्‌भुत क्षमता है। पञ्चतन्त्र की सभी कहानियों में नैतिक शिक्षा दी गई है। आचार और नीति में कुशलता प्रदान करना इन कथाओं का मुख्य उद्देश्य है। पञ्चतन्त्र में ही कहा गया है कि शिक्षा से दूर भागने वाले राजकुमारों को आचार-व्यवहार का ज्ञान देने के लिए ये कथाएँ.कही गई हैं। पद्यों में नैतिक शिक्षाएँ दी गई हैं, जिन्हें कंठस्थ करना बहुत सरल है। नीति-शिक्षा के मूल भाग की अभिव्यक्ति श्लोकों में ही संभव थी।

पञ्चतन्त्र में कथाओं को परस्पर गूँथकर संकलित किया गया है, जिससे उद्देश्य में एकरूपता रहे। कथा के पात्र अन्तिम श्लोक में किसी दूसरी कथा का संकेत करते हैं और पुनः वह संकेतित कथा चल पड़ती है। इसी प्रकार

कथा में कथा को जन्म देकर एक श्रृंखला बनाई गई है। मुख्य कथा का सूत्र स्मरण रखना होता है। कथा में उत्सुकता बढ़ाने का प्रयास पञ्चतन्त्र में सर्वत्र प्राप्त होता है। इसमें पाँच खण्ड हैं। इन खण्डों को तंत्र कहा गया है। ये हैं- **मित्रभेद, मित्रसंप्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश** तथा **अपरीक्षितकारक**। इनमें कुल सत्तर कथाएँ मिलती हैं तथा 900 श्लोक हैं।

पञ्चतन्त्र के लेखक का नाम विष्णुशर्मा है। इनके व्यक्तित्व तथा समय के विषय में कुछ कहना कठिन है। बहुत से लोग विष्णुशर्मा को कौटिल्य या चाणक्य से सम्बद्ध मानते हैं। पञ्चतन्त्र के अनुसार वे सभी शास्त्रों में पारंगत थे और वैदिक धर्म के अनुयायी थे। अर्थशास्त्र का सार उन्होंने इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया है। महिलारोप्य नामक नगर के राजा अमरसिंह के तीन मूर्ख पुत्रों को छह मास में राजनीति और व्यवहार में पटु बनाने के लिए पञ्चतन्त्र लिखा गया था। पञ्चतन्त्र का प्रचार विदेशों में भी हुआ है। ईसा की छठी शताब्दी में इसका अनुवाद पहलवी भाषा में हुआ था जिससे एक ईसाई पादरी ने सीरियन भाषा में अनुवाद किया। यही अनुवाद यूरोप और पश्चिमी एशिया की भाषाओं में पञ्चतन्त्र के अनुवाद का आधार बना। इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड तथा अन्य पूर्वी देशों में भी पञ्चतन्त्र की कथाएँ अनुवादों के माध्यम से पहुँची। इस प्रकार यूरोप और एशिया की अधिकांश भाषाओं में पञ्चतन्त्र अपनी रोचकता के कारण पहुँच गया।

इसमें अत्यंत सरल भाषा का प्रयोग है। यह संस्कृत के प्रारंभिक छात्रों के लिए भाषा और शैली को सीखने का उत्तम साधन है।

हितोपदेश

पञ्चतन्त्र के आधार पर नारायण पंडित ने नीति-कथाओं के संग्रह के रूप में '**हितोपदेश**' नामक एक लघु ग्रन्थ लिखा है। इनका समय 14वीं शताब्दी ई. माना जाता है। हितोपदेश की 43 कथाओं में 25 पञ्चतन्त्र से ली गई हैं। नारायण पण्डित के आश्रयदाता बंगाल के राजा धवलचन्द्र थे। हितोपदेश में चार परिच्छेद हैं– **मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह** और **संधि**। कथा से कथा आरंभ करने की पद्धति इसमें भी पञ्चतन्त्र के समान ही है। इसकी रचना यद्यपि बंगाल में हुई थी, किन्तु यह सम्पूर्ण भारत में लोकप्रिय हो गया। इसमें अनेक रोचक और शिक्षाप्रद श्लोक आए हैं, जैसे– मूर्खों को उपदेश देने से

उनका क्रोध बढ़ता है, शान्त नहीं होता (**उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शांतये**)। वह माता शत्रु है और वह पिता वैरी है, जिसने अपने बच्चे को नहीं पढ़ाया। जिस प्रकार हंसों के बीच बगुला नहीं शोभता, उसी प्रकार ऐसा बालक सभा के बीच शोभा नहीं पाता–

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा।।

हितोपदेश पञ्चतन्त्र की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय है। इसके उपदेश हृदय पर शीघ्र प्रभाव डालते हैं।

बृहत्कथा

यह गुणाढ्य के द्वारा पैशाची भाषा में लिखी गई कथा थी। मूल ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं है। गुणाढ्य का काल ईसा की प्रथम शताब्दी माना जाता है। कश्मीर की जनश्रुति के अनुसार बृहत्कथा श्लोकों में थी, किन्तु दण्डी इसे गद्य-रचना के रूप में संकेतित करते हैं। गुणाढ्य ने लोक-जीवन में प्रचलित कथाओं का संकलन करके उसकी रचना की थी। इसका नायक उदयन का पुत्र नरवाहनदत्त है और नायिका मदनमञ्जूषा है, जिसे मानसवेग हर कर ले जाता है। मन्त्री गोमुख की सहायता से राजकुमार मदनमञ्जूषा को पाकर विद्याधरों का राजा बनता है। आलोचकों ने उस पर रामायण के सीता-हरण का प्रभाव बतलाया है। इसके लेखक गुणाढ्य की प्रशंसा अनेक संस्कृत कवियों ने की है। आज बृहत्कथा के कथानक को जानने के साधन संस्कृत भाषा में बनाए गए कतिपय संस्करण हैं, जैसे– **बृहत्कथामञ्जरी**, **कथासरित्सागर** इत्यादि।

बृहत्कथा-श्लोकसंग्रह

यह **बुधस्वामी** के द्वारा बृहत्कथा का संक्षिप्त रूपान्तर है। इनमें आज 28 सर्ग प्राप्त होते हैं, जिनमें 4500 श्लोक हैं। बुधस्वामी का काल छठी या सातवीं शताब्दी ई. माना जाता है। ये नेपाल के निवासी थे। नायक और नायिका के चरित्र और उनके पारस्परिक सम्बन्ध का इसमें अधिक संगत निर्वाह हुआ है। इसकी शैली सरल, स्पष्ट और गतिशील है। काव्य के अलंकरण घटनाक्रम को अवरुद्ध नहीं करते।

बृहत्कथामञ्जरी

बृहत्कथा का यह संक्षिप्त संस्कृत संस्करण क्षेमेन्द्र द्वारा महाकाव्य के रूप में लिखा गया है। इसमें 7500 श्लोक हैं। क्षेमेन्द्र (995-1070 ई.) कश्मीरी कवि थे। इन्होंने महाभारत और रामायण के जिस प्रकार संक्षिप्त संस्करण बनाए, उसी पद्धति से उन्होंने बृहत्कथामञ्जरी भी लिखी। मूल कथाओं में काट-छाँट होने से दुरूहता उत्पन्न हो गई है। अतः वर्णन प्रायः शुष्क हो गए हैं। नरवाहनदत्त पर केन्द्रित इस काव्यात्मक कथा में अनेक उपकथाएँ दी गई हैं, जिससे मूल कथावस्तु शिथिल हो गई है। क्षेमेन्द्र ने इसमें अनेक विच्छिन्न कथाओं को परस्पर गूँथने का प्रयास किया है।

कथासरित्सागर

यह बृहत्कथा का सबसे बड़ा संस्कृत संस्करण है, जिसमें 24000 श्लोक हैं। इसके लेखक सोमदेव कश्मीर के निवासी थे। ये क्षेमेन्द्र के समकालिक थे। उन्होंने राजा अनन्त की पत्नी सूर्यमती के विनोद के लिए 1063 तथा 1081 ई. के बीच इस ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ का विभाजन लम्बकों और तरंगों में किया गया है। वृत्तान्त को प्रभावशाली बनाने के लिए सोमदेव ने बहुत प्रयास किया है।

क्षेमेन्द्र की नीरसता इनमें बिल्कुल नहीं है। कश्मीर के विदूषकों और सामान्य जनों की कहानियाँ भी इसमें जोड़ी गई हैं। अन्धविश्वास, जादूगरी, शैवमत, बौद्धमत, कर्मवाद, शिवपूजा, मातृपूजा इत्यादि का चित्रण इस ग्रन्थ में कुशलता से किया गया है। सोमदेव की कथा-शैली सरल, सरस और प्रवाहमय है। कठिन शब्दों और जटिल कथानकों का प्रयोग ये नहीं करते। कुल मिलाकर कथासरित्सागर की लोकप्रियता के पर्याप्त कारण विद्यमान हैं।

वेतालपञ्चविंशतिका

यह अत्यन्त लोकप्रिय कथाओं का संग्रह है। इसका प्राचीनतम रूप बृहत्कथामञ्जरी और कथासरित्सागर में मिलता है। इसमें 25 कहानियाँ दी गई हैं। इसके कई संस्करण प्राप्त होते हैं। पहला संस्करण शिवदास का है जिसमें कहीं-कहीं श्लोक भी मिलते हैं। इस प्रकार यह गद्य-पद्यात्मक संस्करण है। दूसरा संस्मरण बिल्कुल गद्यात्मक है, जो जम्भलदत्त के द्वारा

बनाया गया है। ये दोनों संस्करण 14वीं शताब्दी के पहले ही बन चुके थे। इसकी कथाएँ इतनी लोकप्रिय हैं कि भारत की सभी भाषाओं में अनुवाद के रूप में पाई जाती हैं।

इसमें विक्रमसेन (विक्रमादित्य) की कथाएँ हैं। कोई सिद्ध पुरुष राजा को रत्नगर्भित फल देता है और उसकी सिद्धि में सहायता के लिए राजा को एक वृक्ष पर लटकते हुए शव को लाने के लिए कहता है। वह शव किसी वेताल के आधिपत्य में है, जो शव ले जाते समय राजा को चुप रहने के लिए कहता है, किंतु वेताल ऐसी विचित्र कथाएँ सुनाता है कि राजा को बोलना ही पड़ता है। वेताल के प्रश्न बड़े जटिल हैं, किंतु राजा का उत्तर भी बड़ा सुन्दर होता है। इस प्रकार ग्रन्थ पहेली और उसके उत्तर के रूप में है। इन कथाओं से बुद्धि का विकास होता है।

सिंहासनद्वात्रिंशिका (द्वात्रिंशत्पुत्तलिका)

यह एक मनोरंजक कथा-संग्रह है, जिसमें 32 पुतलियाँ राजा भोज को 32 कहानियाँ सुनाती हैं। राजा भोज भूमि में गड़े हुए विक्रमादित्य के सिंहासन को उखाड़ता है और उस पर बैठना चाहता है, किंतु उस सिंहासन में जड़ी हुई 32 पुतलियाँ एक.एक करके विक्रमादित्य के पराक्रम को सुनाती हैं और राजा को अयोग्य सिद्ध करके उस पर बैठने से रोकती हैं। इस कथा के दो संस्करण प्राप्त होते हैं : दक्षिण.भारतीय और उत्तर.भारतीय। उत्तर.भारतीय संस्करण में भी तीन पाठ मिलते हैं : जैन पाठ, बंगाली पाठ तथा लघुपाठ। दक्षिण.भारतीय संस्करण विक्रमचरित कहलाता है। इसके भी पद्यबद्ध और गद्यबद्ध दो पाठ हैं। इनमें कौन संस्करण मौलिक है, कहा नहीं जा सकता।

शुकसप्तति

यह एक लोकप्रिय रचना है, जिसमें 70 कहानियाँ संकलित हैं। इसका वक्ता एक तोता है। मदनसेन नामक व्यापारी अपनी पत्नी से दृढ़ अनुराग रखता है, किन्तु उसे कार्यवश परदेश जाना पड़ता है। जाते समय वह पत्नी की देखभाल के लिए तोते को छोड़ जाता है।

जब नववधू अपने सती-धर्म को छोड़ने के लिए उद्यत होती है, तब तोता प्रत्येक रात को एक कहानी सुनाता है। कहानी से मनोरंजन तो होता है, वियोग की पीड़ा भी दूर होती है और वह स्त्री पथभ्रष्ट होने से बच जाती

है। 70वीं कहानी पूरी होते ही उसका पति विदेश से लौट आता है। इन कहानियों में दुश्चरित्र स्त्रियों की चतुरता का वर्णन है। ये सभी कहानियाँ उपदेशप्रद, रोचक तथा सरल हैं। इनकी रचना गद्य में हुई है, किन्तु कहीं-कहीं पद्य भी हैं।

इस ग्रन्थ के दो पाठ मिलते हैं– एक पाठ चिंतामणि भट्ट रचित है और दूसरा किसी जैनमतावलम्बी लेखक का है।

अन्य कथा-ग्रन्थ

संस्कृत भाषा के कथा-ग्रन्थ कई प्रकार के हैं। बौद्धों, जैनों तथा ब्राह्मण धर्म वाले लेखकों ने अपने-अपने क्षेत्रों में प्रचलित कथाएँ गद्य-पद्य में लिखीं। इनमें कुछ का उद्देश्य तो शुद्ध मनोरंजन था, किन्तु अधिकांश लेखकों ने धार्मिक एवं नैतिक उपदेश के लिए ही कथाएँ लिखीं। बौद्ध लोक-कथाओं का प्राचीनतम ग्रन्थ **अवदान-शतक** है, जिसका चीनी भाषा में अनुवाद तीसरी शताब्दी ई. में हो गया था। अतः यह इसके पूर्व की रचना है। इसकी कहानियाँ उपदेशों से भरी हैं। दूसरा प्रमुख कथा-ग्रन्थ **दिव्यावदान** है, जिसमें साहित्यिक सौन्दर्य तो नहीं, किन्तु कथाएँ रोचक हैं। अशोक के पुत्र कुणाल की करुण कथा इसमें आई है, जिसकी आँखें उसकी विमाता ने निकलवा ली थीं। इसका रचनाकाल दूसरी शताब्दी ई. है। आर्यशूर-कृत **जातकमाला** भी बौद्ध कथासाहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसमें बोधिसत्त्व की 34 कथाएँ हैं। इसमें महायान-धर्म के अनुसार बोधिसत्त्व के दिव्य कर्मों का वर्णन किया गया है। इसका उद्देश्य भी आचारपरक शिक्षा देना था। जातकमाला पञ्चतन्त्र के समान गद्य-पद्यात्मक रचना है, किन्तु इसकी शैली कुछ अलंकृत है और लम्बे समास भी आए हैं। इसका समय तीसरी-चौथी शताब्दी ई. है।

जैनों ने भी अनेक कथाएँ लिखीं। इनकी अधिकांश कथाएँ प्राकृत में हैं, किन्तु संस्कृत में भी उनके कुछ कथाग्रन्थ मिलते हैं। सिद्धार्थ (900 ई.) की **उपमितिभवप्रपंचकथा** में प्रतीकात्मक रूप से आत्मा का वर्णन है। मेरुतुंग ने **प्रबन्ध-चिन्तामणि** की रचना 1305 ई. में की थी। इसमें पाँच प्रकाश हैं जिनमें कई प्राचीन राजाओं, विद्वानों और कवियों का वृत्तान्त लिखा गया है। एक अन्य जैन कवि राजशेखर (1350 ई.) ने **प्रबन्धकोष** लिखा, जिसमें 24 प्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवनी है।

विद्यापति (14वीं शताब्दी ई.) ने **पुरुष-परीक्षा** की रचना लोगों को लोकनीति का ज्ञान देने के लिए की थी। इसमें 44 कथाएँ हैं, जो मानवीय गुणों का प्रतिपादन करती हैं। 16वीं शताब्दी में वल्लालसेन ने **भोजप्रबंध** लिखा, जिसमें राजा भोज और कालिदास के विषय में प्रचलित दन्तकथाओं का गद्य-पद्यात्मक संग्रह है। इस प्रकार सभी मतावलम्बियों की अपनी-अपनी कथाएँ हैं, जिनसे मनोरंजन और नीतिशिक्षा की प्राप्ति होती है। ये कथाएँ आज भी नवयुवकों को जीवन-यापन की दिशा देने में पूर्ण समर्थ हैं।

सारांश

कथा के द्वारा बालकों को शिक्षित करने के लिए संस्कृत में भी अनेक लोक-कथाएँ और नीतिकथाएँ लिखी हुई हैं, जिनमें पञ्चतन्त्र प्राचीनतम उपलब्ध कथासंग्रह है।

- ***पञ्चतन्त्र** : पञ्चतन्त्र में पशु-पक्षियों तथा मनुष्यों को पात्र बनाकर कथाएँ कही गई हैं। इसमें पांच तन्त्र या खण्ड हैं– मित्रभेद, मित्रसंप्राप्ति, कालोलूकीय, लब्धप्रणाश तथा अपरीक्षितकारक। इनमें कुल सत्तर कथाएँ हैं। पञ्चतन्त्र के लेखक का नाम विष्णुशर्मा है, परन्तु इनका समय और स्थान अज्ञात है।*
- ***हितोपदेश** : पञ्चतन्त्र के आधार पर नारायण पण्डित ने नीति-कथाओं से युक्त हितोपदेश नामक ग्रन्थ की रचना की है। नारायण पण्डित का समय चौदहवीं शताब्दी माना जाता है। हितोपदेश में कुल तैंतालीस कथाएँ हैं, जिनमें से पच्चीस पञ्चतन्त्र से ली गई हैं। हितोपदेश में चार परिच्छेद हैं– मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और सन्धि।*
- ***बृहत्कथा** : गुणाढ्य ने पैशाची भाषा में बृहत्कथा की रचना की। मूल ग्रन्थ आज प्राप्त नहीं होता है, परन्तु इसके आधार पर बाद में अनेक ग्रन्थ संस्कृत में लिखे गए।*
- ***बृहत्कथाश्लोकसंग्रह** : बुधस्वामी ने संस्कृत भाषा में बृहत्कथाश्लोकसंग्रह नामक ग्रन्थ के माध्यम से बृहत्कथा का संक्षिप्त रूपान्तर प्रस्तुत किया है। इसमें 28 सर्ग हैं और साढ़े चार हजार श्लोक हैं।*
- ***बृहत्कथामञ्जरी** : क्षेमेन्द्र ने महाकाव्य की शैली में बृहत्कथा का संस्कृत रूपान्तर प्रस्तुत किया है। इसमें साढ़े सात हजार श्लोक हैं। क्षेमेन्द्र 11वीं शताब्दी के कश्मीरी कवि थे।*
- ***कथासरित्सागर** : कथासरित्सागर बृहत्कथा का सबसे बड़ा संस्कृत संस्करण है, जिसमें चौबीस हजार श्लोक हैं। इसके लेखक सोमदेव (11 वीं शताब्दी ई.) भी कश्मीरी थे।*

- ***वेतालपञ्चविंशतिका*** *: वेतालपञ्चविंशतिका में राजा विक्रमादित्य के द्वारा वेताल को ढोने और उस वेताल के द्वारा कही हुई पच्चीस कथाओं का संग्रह है। इन कथाओं का मूल रूप बृहत्कथामञ्जरी और कथासरित्सागर में प्राप्त होता है।*
- ***सिंहासनद्वात्रिंशिका*** *(द्वात्रिंशत्पुत्तलिका) : यह एक मनोरंजक कथा-संग्रह है, जिसमें बत्तीस पुतलियाँ राजा भोज को बत्तीस कहानियाँ सुनाती हैं।*
- ***शुकसप्तति*** *: इसमें सत्तर कहानियाँ हैं, जिन्हें एक तोता प्रत्येक रात्रि में सुनाता है, जिसे सुनकर मदनसेन नामक व्यापारी की पत्नी पथभ्रष्ट होने से बच जाती है।*

इन कथा-ग्रन्थों के अतिरिक्त बौद्धों, जैनों तथा वैदिक धर्मावलम्बियों ने भी अनेक कथा-ग्रन्थों की रचना की है। बौद्धकथा ग्रन्थों में अवदानशतक, दिव्यावदान, आर्यशूरकृत जातकमाला आदि प्रमुख हैं। जैनों के कथाग्रन्थों में मेरुतुंग (1305 ई) की प्रबन्धचिन्तामणि, राजशेखर (1350 ई.) का प्रबन्धकोश आदि उल्लेखनीय हैं। विद्यापति (14वीं शताब्दी) की पुरुष-परीक्षा, वल्लालसेन (16वीं शताब्दी)का भोजप्रबन्ध आदि कथा-ग्रन्थ भी उपदेशपरक हैं।

अभ्यास-प्रश्न

1. पञ्चतन्त्र में कितने तन्त्र हैं? उनके नाम लिखिए।
2. पञ्चतन्त्र की कथाओं का प्रचार किन-किन देशों में हुआ?
3. हितोपदेश किसकी रचना है?
4. हितोपदेश में कितने परिच्छेद हैं? उनके नाम लिखिए।
5. हितोपदेश की रचना कहाँ हुई थी?
6. बृहत्कथा के कथानक को जानने के लिए संस्कृत भाषा में कौन-कौन से ग्रन्थ हैं?
7. बृहत्कथा-श्लोक-संग्रह किसकी रचना है? उसके श्लोकों की संख्या लिखिए।
8. वेतालपञ्चविंशतिका में कितनी कहानियाँ हैं?
9. सिंहासनद्वात्रिंशिका का दूसरा नाम क्या है?
10. शुकसप्तति में वक्ता कौन है?
11. संस्कृत के कथाग्रन्थों का मुख्य उद्देश्य क्या था?
12. जैनों के तीन कथाग्रन्थों का मुख्य उद्देश्य क्या था?

13. रिक्तस्थान भरिए–

(क) भारत का प्राचीनतम कथासंग्रह .... है।

(ख) कवि नारायण पण्डित के आश्रयदाता बंगाल के राजा .... थे।

(ग) बृहत्कथा की रचना .... ने .... भाषा में की।

(घ) बौद्ध लोक-कथाओं का प्राचीनतम ग्रन्थ .... शतक है।

(ङ) अशोक के पुत्र कुणाल की करुण कथा .... कथाग्रन्थ में आई है।

(च) जातकमाला का .... कथासाहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(छ) पुरुष-परीक्षा कथाग्रन्थ .... की रचना है।

14. कथाग्रन्थ और लेखकों को मिलाइए–

कथाग्रन्थ	***लेखक***
भोजप्रबन्ध	क्षेमेन्द्र
बृहत्कथामञ्जरी	सोमदेव
कथासरित्सागर	वल्लालसेन

15. कवि और उनके काल को ठीक-ठीक मिलाइए–

कवि (लेखक)	***काल***
नारायण पंडित	प्रथम शताब्दी
गुणाढ्य	ग्यारहवीं शताब्दी
क्षेमेन्द्र	900 ई.
सिद्धार्थ	चौदहवीं शताब्दी

नवम अध्याय

चम्पूकाव्य

संस्कृत साहित्य में गद्य-काव्य तथा पद्य-काव्य के अतिरिक्त दोनों के मिश्रण के रूप में चम्पूकाव्य का भी उदय हुआ। यद्यपि स्वरूपतः चम्पू नीति-कथाओं के समान ही गद्य और पद्य से समन्वित होता है, किन्तु नीतिकथाओं और चम्पू में मौलिक अन्तर है। चम्पू मूलतः एक काव्य है, जिसमें कवि अलंकरण के सभी साधनों का उपयोग करता है। एक ओर इसमें गद्यकाव्य का सौंदर्य होता है, तो दूसरी ओर महाकाव्य में पाए जाने वाले श्लोकों के समान अलंकृत पद्य भी इसमें रहते हैं। बाह्य सौन्दर्य इसमें मुख्य होता है और कवि की कला का चमत्कार रहता है, किन्तु विषयवस्तु की प्रधानता नहीं रहती। इसका उद्देश्य काव्यगत आनन्द देना है, सामान्य मनोरंजन करना या उपदेश देना, नहीं। नीतिकथाओं और लोक-कथाओं के समान चम्पू-काव्य सरल शैली में नहीं लिखे जाते। गद्य और पद्य दोनों का उत्कर्ष इसमें वर्तमान रहता है– **गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।** चम्पू.काव्यों को उच्छ्वासों में गद्यकाव्य के समान ही विभक्त किया जाता है। संस्कृत में अनेक चम्पू.काव्य समय. समय पर लिखे गए हैं। इनमें कुछ प्रमुख चम्पू.काव्यों का विवरण इस प्रकार है–

1. नलचम्पू और मदालसाचम्पू

ये दोनों त्रिविक्रमभट्ट के द्वारा लिखे गए चम्पूकाव्य हैं। इनका काल 10वीं शताब्दी ई. का पूर्वार्ध माना जाता है। त्रिविक्रमभट्ट राष्ट्रकूट नरेश इन्द्रराज के संरक्षण में रहते थे। नलचम्पू को **दमयन्तीकथा** भी कहते हैं। इसमें नल और दमयन्ती के प्रेम की कथा वर्णित है। इसमें 7 उच्छ्वास हैं। रचना अपूर्ण प्रतीत होती है, क्योंकि नल द्वारा दमयन्ती के निकट संन्देश ले जाने तक की

ही कथा इसमें वर्णित है। नलचम्पू सरस तथा प्रसादपूर्ण रचना है। इसमें श्लेष की अधिकता है। त्रिविक्रमभट्ट के श्लेष बहुत सरल और आकर्षक हैं। इन्होंने विरोध और परिसंख्या अलंकारों का भी सफल प्रयोग किया है।

इनकी दूसरी रचना मदालसाचम्पू है, जो प्रणय-कथा है। इसमें कुवलयाश्व से मदालसा का प्रेम वर्णित है। कुवलयाश्व से मदालसा का विवाह होता है किन्तु तुरन्त वियोग भी हो जाता है। अन्त में उसे मदालसा की प्राप्ति होती है। यद्यपि कला की दृष्टि से इसमें उत्कृष्टता नहीं है, किन्तु कथा के विकास और रोचकता की दृष्टि से यह कृति लोकप्रिय रही है।

2. यशस्तिलकचम्पू

यह जैन कवि **सोमप्रभसूरि** की रचना है। लेखक का काल 10वीं शताब्दी ई. का उत्तरार्द्ध है। यह ग्रन्थ अत्यन्त विस्तृत है। इसमें आठ उच्छ्वास हैं। जैन सिद्धान्तों को इसमें काव्य-रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस चम्पू-काव्य का नायक राजा यशोधर है। पत्नी की धूर्तता से राजा की मृत्यु होती है। नाना योनियों में जन्म लेकर अन्ततः वह जैन धर्म में दीक्षित होता है। यह कथा गुणभद्र के उत्तरपुराण पर आश्रित है। इसी कथा पर पुष्पदन्त ने **जसहरचरिउ** नामक अपभ्रंश-काव्य तथा वादिराजसूरि ने संस्कृत काव्य **यशोधरचरित** लिखा था। इस कृति द्वारा सोमप्रभसूरि के गहन अध्ययन, प्रगाढ़ पाण्डित्य, भाषा पर स्वच्छन्द प्रभुत्व तथा काव्य के क्षेत्र में अभिनव प्रयोगों की रुचि का पता लगता है। इसके आरम्भिक श्लोकों में कवि ने अनेक पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख किया है।

एक अन्य जैन कवि हरिचन्द्र ने राजकुमार जीवन्धर को चरितनायक बना कर **जीवन्धरचम्पू** लिखा। इनका काल भी 10वीं शताब्दी ई. है। यह चम्पू 11 लम्बकों में विभक्त है। जैनधर्म के सिद्धान्तों को इसमें सरल शैली में प्रतिपादित किया गया है।

3. उदयसुन्दरीकथा

यह छह उच्छ्वासों में नागराजकुमारी उदयसुन्दरी तथा प्रतिष्ठान के राजा मलयवाहन के विवाह का वर्णन करने वाला चम्पू-काव्य है। इसके रचयिता का नाम सोड्ढल है। लेखक का समय 1040 ई. के आसपास है, उदयसुन्दरीकथा पर बाणभट्ट की शैली का बहुत प्रभाव है। सोड्ढल ने इसकी रचना हर्षचरित के आदर्श पर की है।

4. रामायणचम्पू

इसे **चम्पूरामायण** भी कहते हैं। इसे मूलतः राजा भोज ने लिखा, किन्तु उन्होंने केवल सुन्दरकाण्ड तक ही इसकी रचना की। युद्धकाण्ड की रचना लक्ष्मणभट्ट ने की तथा उत्तरकाण्ड की वेंकटराज ने। भोज का काल 11वीं शताब्दी ई. का पूर्वार्द्ध है। इसका आधार वाल्मीकीय रामायण है। कथानक, भाव, भाषा, गुण-दोष इत्यादि सभी पर वाल्मीकि का प्रभाव लक्षित होता है। इसमें भोज ने कई प्रकार की शैलियाँ अपनाई हैं। कहीं वे माघ की शैली में लिखते हैं, कहीं कालिदास की शैली में। भोज शब्दों के संयोजन में पूर्ण निपुण हैं। इस चम्पू में कलापक्ष पर ही ध्यान नहीं दिया गया है, अपितु मार्मिक स्थलों के भाव-सौंदर्य को भी प्रकट किया गया है। इसमें गद्यभाग कम है, पद्यों की बहुलता है।

5. भारतचम्पू

इसके लेखक अनन्तभट्ट हैं। इसमें महाभारत की कथा का विस्तार से वर्णन किया गया है। लेखक का काल 16वीं शताब्दी ई. है। भारतचम्पू में 12 स्तबक हैं। कवि का वर्णन अत्यन्त प्रांजल है, किन्तु कहीं-कहीं क्लिष्टता भी है। कल्पना की नवीनता और वैदर्भी शैली का प्रयोग इसकी विशिष्टता है। यह चम्पू संस्कृत जगत् में बहुत प्रसिद्ध है।

6. अन्य चम्पूकाव्य

संस्कृत में प्रायः 250 चम्पूकाव्य लिखे गए हैं। इनके कथानक रामायण, महाभारत, भगवतपुराण, शिवपुराण तथा जैन साहित्य से लिए गए हैं। **नृसिंहचम्पू** नामक ग्रन्थ पृथक्-पृथक् कई कवियों के द्वारा लिखा गया। केशवभट्ट ने छह स्तबकों में, दैवज्ञसूरि ने पाँच उच्छ्वासों में तथा संकर्षण ने चार उल्लासों में **नृसिंहचम्पू** की रचना की। शेषश्रीकृष्ण-रचित **पारिजातहरणचम्पू** कृष्णलीला से सम्बद्ध है। नीलकण्ठदीक्षित-कृत **नीलकण्ठविजयचम्पू**, तिरुमलाम्बा-कृत **वरदाम्बिकापरिणयचम्पू**, वेङ्कटाध्वरि कृत **विश्वगुणादर्शचम्पू**, कविकर्णपूररचित **आनन्दवृन्दावनचम्पू** तथा जीवगोस्वामी-कृत **गोपालनचम्पू** कुछ प्रसिद्ध चम्पू-काव्य हैं।

बीसवीं शताब्दी ई. के पूर्वार्द्ध में प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् म. म. हरिहरकृपालु द्विवेदी के जीवन चरित का आधार बनाकर रघुनन्दन त्रिपाठी ने **हरिहरचरितचम्पू** लिखा।

सारांश

संस्कृत साहित्य में गद्य-काव्य और पद्य-काव्य के अतिरिक्त दोनों के मिश्रण से चम्पू-काव्य की रचना हुई। संस्कृत में अनेक चम्पू-काव्य लिखे गए हैं।

- ***नलचम्पू और मदालसाचम्पू** : ये दोनों ही त्रिविक्रमभट्ट के द्वारा रचित चम्पूकाव्य हैं। इनका समय दसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। ये राष्ट्रकूट-नरेश इन्द्रराज के संरक्षण में रहते थे। नलचम्पू को दमयन्तीकथा भी कहते हैं, जिसमें राजा नल और दमयन्ती की प्रेम -कथा वर्णित है। इसमें श्लेष की प्रधानता है। मदालसाचम्पू में कुवलयाश्व और मदालसा का परस्पर प्रेम चित्रित है।*
- ***यशस्तिलकचम्पू** : यह जैनकवि सोमप्रभसूरि की रचना है। इनका समय दसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। इस ग्रन्थ में आठ उच्छ्वास हैं, जिनमें जैन सिद्धान्तों को काव्यरूप में प्रस्तुत किया गया है। इस चम्पू का नायक राजा यशोधर है, जिसकी कथा गुणभद्र के उत्तरपुराण पर आश्रित है।*

  एक अन्य जैन कवि हरिचन्द्र ने राजकुमार जीवन्धर को चरित-नायक बनाकर जीवन्धरचम्पू लिखा है।
- ***उदयसुन्दरीकथा** : यह छह उच्छ्वासों में नागराजकुमारी उदयसुन्दरी तथा प्रतिष्ठान के राजा मलयवाहन के विवाह का वर्णन करने वाला चम्पू-काव्य है। इसके रचयिता सोड्ढल (1040 ई. के आसपास) है।*
- ***रामायणचम्पू** : इसे चम्पू रामायण भी कहते हैं। इसके सुन्दरकाण्ड तक की रचना राजा भोज ने, युद्धकाण्ड की रचना लक्ष्मणभट्ट ने तथा उत्तरकॉण्ड की रचना वेंकटराज ने की है। इसका आधार रामायण है। भोजराज का समय 11वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।*
- ***भारतचम्पू** : इसके लेखक अनन्तभट्ट (16वीं शताब्दी) हैं। यह महाभारत की कथा पर आधारित है।*

अभ्यास-प्रश्न

1. चम्पूकाव्य किसे कहते हैं?
2. नीतिकथा और चम्पू में क्या अन्तर है?
3. चम्पू-काव्यों का क्या उद्देश्य है?
4. त्रिविक्रम भट्ट के द्वारा लिखे गए दो चम्पू-काव्यों के नाम लिखिए।

5. कवि त्रिविक्रमभट्ट किस नरेश के संरक्षण में रहते थे?
6. दमयन्ती-कथा का दूसरा नाम क्या है?
7. नलचम्पू काव्य की विशेषताएँ लिखिए।
8. मदालसाचम्पू में किसके प्रेम का वर्णन है?
9. यशस्तिलकचम्पू का लेखक कौन है?
10. जीवन्धरचम्पू के लेखक कौन थे? वे किस शताब्दी में हुए?
11. सोड्ढल की रचना पर किस कवि की शैली का प्रभाव पड़ा है?
12. भोज ने अपने चम्पू में किन-किन कवियों की शैली अपनाई है?
13. महाभारत की कथा के आधार पर लिखित प्रसिद्ध चम्पू का नाम लिखिए।
14. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए—
    (क) यशस्तिलकचम्पू में .... धर्म के सिद्धान्तों का वर्णन है।
    (ख) यशस्तिलकचम्पू का नायक .... है।
    (ग) सोड्ढल की रचना का नाम .... है।
    (घ) राजा भोज ने .... चम्पू की रचना की।
    (ङ) भारतचम्पू के लेखक .... हैं।
15. चम्पू और लेखक के नामों को मिलाइए—

क	ख
पारिजातहरणचम्पू	जीवगोस्वामी
आनन्दवृंदावनचम्पू	तिरुमलाम्बा
गोपालनचम्पू	कविकर्णपूर
वरदाम्बिकापरिणयचम्पू	दैवज्ञसूरि
विश्वगुणादर्शचम्पू	शेषश्रीकृष्ण
नृसिंहचम्पू	वेङ्कटाध्वरि

दशम अध्याय

नाट्य-साहित्य

संस्कृत भाषा में विशाल नाट्य-साहित्य है। नाट्य-कृति में मानव की विभिन्न अवस्थाओं का अनुकरण किया जाता है। दृश्यकाव्य होने के कारण नाट्य को रूपक भी कहते हैं। नाट्याचार्यों ने दस प्रकार के रूपक बतलाए हैं। इनमें सबसे अच्छा नाटक माना गया है। अतएव प्रायः लोग नाट्य, रूपक और नाटक का प्रयोग समान अर्थ में करते हैं। संस्कृत भाषा में बहुत प्राचीन काल से रूपक लिखे जाते रहे हैं। यह परम्परा आज तक चल रही है। लिखने के साथ-साथ बहुत से रूपकों का अभिनय भी होता रहा है। राजसभाओं में विशिष्ट अवसरों पर संस्कृत रूपकों का अभिनय होता था। इसी प्रकार ग्रामों और नगरों में भी नाटक-मण्डलियाँ जनता के मनोरंजन के लिए नाटक खेलती थीं। जब जन-सामान्य से संस्कृत का प्रयोग हट गया तब लोक-प्रचलित भाषाओं में नाटक खेले जाने लगे। आज स्थिति यह हो गई है कि संस्कृत नाटक विशिष्ट तथा प्रबुद्ध वर्गों के बीच ही अभिनीत होते हैं।

संस्कृत रूपकों की उत्पत्ति कैसे हुई, इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए विभिन्न सिद्धान्त प्रचलित हुए। पाश्चात्य विद्वानों ने पुत्तलिका-नृत्य, धार्मिक-नृत्य, वीर-पूजा, यूनानी प्रभाव इत्यादि सिद्धान्त दिए हैं। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में विवरण दिया है कि ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य (संवाद), सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर नाट्य-वेद नामक नई विद्या (जिसे पंचम वेद कहा गया) विकसित की। शिव और पार्वती ने क्रमशः ताण्डव और लास्य नामक नृत्य की व्यवस्था करके इस विद्या को समृद्ध किया। नाट्य-शास्त्र के अनुसार भरत के पुत्रों और शिष्यों ने अप्सराओं और गन्धर्वों के साथ मिलकर अमृतमन्थन और त्रिपुरदाह नामक रूपकों का अभिनय किया था। ये ही प्रथम रूपक थे।

इस विवरण में कल्पना का अंश भले ही अधिक हो, किन्तु यह बात निश्चित है कि संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति इसी देश में जनसामान्य के मनोरंजन के लिए हुई है। इन पर विदेशी प्रभाव का प्रश्न ही नहीं है।

भरतमुनि का नाट्यशास्त्र रूपकों के सम्बन्ध में व्यापक विधान करता है। इसमें रूपकों के भेद, कथा-वस्तु, पात्र, रस, गीत, नृत्य, रंगमंच की व्यवस्था, भाषा का प्रयोग आदि विषयों के विस्तृत नियम बतलाए गए हैं। इसका समय 100 ई. पू. से 300 ई. तक माना गया है। इसमें नियमों की व्यापकता देखते हुए कहा जा सकता है कि बहुत प्राचीन काल में ही नाटक से सम्बद्ध विज्ञान विकसित हो गया था। इसमें नाटकों के पर्याप्त मात्रा में लिखे जाने का भी अनुमान होता है। यहाँ कुछ प्रमुख संस्कृत नाटकों का परिचय दिया जा रहा है।

1. भास के नाटक

सन् 1912 ई. में टी. गणपति शास्त्री को त्रिवेन्द्रम (केरल) में 13 रूपकों की प्राप्ति हुई, जिन्हें उन्होंने भास की कृतियाँ बतलाकर प्रसिद्ध किया। इन रूपकों को "भासनाटकचक्र" का संयुक्त नाम दिया गया। इसके पूर्व तक भास का नाम प्रसिद्ध संस्कृत नाटककार के रूप में जाना जाता था, किन्तु उनकी कृतियाँ नहीं मिली थीं। आरम्भ में उन सभी रूपकों को भासकृत मानने में विद्वानों को आपत्ति हुई, किन्तु धीरे-धीरे यह विवाद समाप्त हो गया। इन रूपकों में परस्पर इतना अधिक साम्य पाया गया कि इन्हें भासरचित मानने में कोई आपत्ति नहीं हुई।

भास के काल के विषय में भी इसी प्रकार का विवाद है। पाश्चात्य विद्वान् उन्हें कालिदास के कुछ पूर्व अर्थात् तीसरी शताब्दी ई. में रखते हैं। गणपति शास्त्री ने उनका काल तीसरी शताब्दी ई. पू. माना है। कुछ भारतीय विद्वान् उनका स्थितिकाल 400 ई. पू. तक ले जाते हैं। अधिसंख्य विद्वानों का यह विचार है कि भास 100 ई. पू. से 200 ई. के बीच रहे होंगे।

भास की रचनाओं को चार भागों में बाँटा जाता है। **प्रतिमानाटक** और **अभिषेक** रामायण पर आश्रित हैं। **बालचरित, पञ्चरात्र, मध्यमव्यायोग, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार** तथा **ऊरुभंग** नामक रूपक महाभारत पर आश्रित हैं। **स्वप्नवासवदत्त** तथा **प्रतिज्ञायौगन्धरायण** उदयन और

वासवदत्ता की प्रसिद्ध कथा पर आश्रित हैं। **अविमारक** और **चारुदत्त** कल्पित रूपक हैं। इन रूपकों में स्वप्नवासवदत्त सर्वाधिक विख्यात है। नाट्य-कला की दृष्टि से भी इसका महत्त्व है। भास के सभी रूपक नाट्य-कला की विकासावस्था के सूचक हैं। भाषा की सरलता, छोटे वाक्यों का प्रयोग, अभिनय की सुगमता, उचित हास्य-प्रयोग तथा कला की दृष्टि से भास के नाटक बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। चारुदत्त चार अंकों का रूपक है, जो बाद में शूद्रक के मृच्छकटिक की रचना का आधार बना। भास की कल्पना-शक्ति तथा कथानक को सजाने का कौशल बहुत उत्कृष्ट है। भास के रूपकों में उस काल की सामाजिक और सांस्कृतिक सूचनाएँ पर्याप्त रूप से मिलती हैं। इनमें पात्रों का सजीव अंकन किया गया है तथा रस की योजना भी उत्कृष्ट रूप में हुई है।

2. कालिदास के नाटक

कालिदास ने तीन नाटक लिखे थे– **मालविकाग्निमित्र**, **विक्रमोर्वशीय** तथा **अभिज्ञानशाकुन्तल**। इनमें अन्तिम नाटक संस्कृत वाङ्मय में सर्वश्रेष्ठ है।

- **मालविकाग्निमित्र** : यह एक ऐतिहासिक नाटक है, जिसमें शुंगवंशीय राजा अग्निमित्र का दासी के वेश में रहने वाली विदर्भ-राजकुमारी मालविका के प्रति प्रेम वर्णित है। इसमें पाँच अंक हैं। अग्निमित्र की महारानी धारिणी शरणागत मालविका को अपना लेती है और नृत्य आदि ललित कलाओं की शिक्षा दिलाती है। राजा अपने अन्तःपुर में उसका नृत्य देखकर मुग्ध हो उठता है। अन्तःपुर में विरोध और तनाव होने पर भी विदूषक की सहायता से राजा और मालविका की भेंट हो जाती है। अन्ततः महारानी धारिणी अपने आप मालविका का हाथ अग्निमित्र के हाथ में दे देती है। इसमें अग्निमित्र के पिता पुष्यमित्र के द्वारा किए गए अश्वमेध का भी संकेत है तथा अग्निमित्र के पुत्र वसुमित्र के द्वारा यवनों पर विजय का भी वर्णन है। इस नाटक में राजप्रासाद के प्रणय-षड्यन्त्रों का सजीव चित्रण है। प्रेम-प्रपंच की घटनाएँ चुभते संवादों और रसपूर्ण विनोद से भरी हैं। कालिदास की इस प्रथम नाट्य-कृति में उनके कलात्मक विकास का बीज निहित है।
- **विक्रमोर्वशीय** : यह कालिदास का दूसरा नाटक है। इसमें राजा पुरूरवा और अप्सरा उर्वशी की प्रेम-कथा का वर्णन है। यह कथा ऋग्वेद

और ब्राह्मण-ग्रन्थों में भी आई है। परम्परा से मिले हुए कथानक को कालिदास ने बड़े कौशल से पाँच अंकों में फैलाया है। पुरूरवा स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी को देखकर मुग्ध हो जाता है और उर्वशी का भी नायक के प्रति अनुराग होता है। महारानी राजा को उर्वशी से प्रेम करने की अनुमति देती है और उर्वशी को भी एक वर्ष के लिए पुरूरवा के साथ रहने की अनुमति मिल जाती है। चतुर्थ अंक में उर्वशी एक लता के रूप में बदल जाती है। पुरूरवा विलाप करता है। राजा के प्रेम से प्रभावित होकर इन्द्र उर्वशी को आजीवन राजा के साथ रहने की अनुमति दे देते हैं। इस नाटक में शृङ्गार के संयोग और विप्रलंभ दोनों रूपों का अत्यन्त मार्मिक प्रयोग हुआ है। इसमें कालिदास की नाट्यकला और काव्यकला भी अधिक विकसित दिखाई पड़ती है। प्रकृति का मानवीय भावों के साथ अधिक सामंजस्य इसमें दिखाया गया है। उदाहरण के लिए उर्वशी के लता रूप में परिणत हो जाने पर महाराज पुरूरवा सामने बहती नदी को ही अपनी प्रेयसी समझ बैठते हैं और उसका वर्णन करते हैं।

- **अभिज्ञानशाकुन्तल :** यह कालिदास का अमर नाटक है, जिसने समस्त संसार के लोगों को प्रभावित किया है। इसमें सात अंक हैं। दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रेम-कथा इसमें चित्रित है। दुष्यन्त हस्तिनापुर का राजा है तथा शकुन्तला कण्व मुनि के आश्रम में पलने वाली एक सुन्दरी कन्या है। दुष्यन्त कण्व की अनुपस्थिति में शकुन्तला से आश्रम में गान्धर्व विवाह कर बैठता है। कुछ दिन वहाँ रहकर वह राजधानी लौट जाता है। जाते समय वह शीघ्र शकुन्तला को बुला लेने का वचन देता है, किन्तु दुर्वासा के द्वारा शकुन्तला को दिए गए शाप के कारण वह उस वचन को भूल जाता है। इधर कण्व आश्रम में लौटकर गर्भवती शकुन्तला को पतिगृह भेजने की तैयारी करते हैं। आश्रम के सभी चेतन पदार्थ इस दृश्य से व्याकुल हैं। चतुर्थ अंक में शकुन्तला की विदाई का यह दृश्य उत्कृष्ट है। दुष्यन्त शाप के कारण शकुन्तला को पहचान नहीं पाता। उसके द्वारा शकुन्तला को दी गई अँगूठी भी खो चुकी है। इसलिए पहचान का कोई उपाय भी नहीं रहता। अन्ततः शकुन्तला मारीच आश्रम में ले जाई जाती है, जहाँ वह भरत नाम के पुत्र को जन्म देती है। इधर जब दुष्यन्त को सब कुछ स्मरण हो जाता है, तो वह बहुत

पश्चात्ताप करता है। संयोगवश इन्द्र की सहायता करके लौटते समय दुष्यन्त मारीच आश्रम में जाता है और उसकी शकुन्तला तथा भरत से भेंट हो जाती है। इस प्रकार नाटक की सुखद समाप्ति होती है।

इस नाटक में कालिदास की नाट्यकला अपने चरम पर पहुँची है। घटनाओं का संयोजन, प्रेम का क्रमिक विकास, प्रकृति का समुचित चित्रण, शकुन्तला की विदाई का कारुणिक दृश्य, विदूषक का हास्य, संवादों की अभिव्यंजना, शृङ्गार-रस का यथेष्ट निष्पादन, दुर्वासा के शाप की कल्पना-ये सभी मिलकर इस नाटक को बहुत ऊँचाई पर पहुँचाते हैं। कालिदास उपमा का प्रयोग करने में अत्यन्त कुशल हैं। आश्रम में रहने वाली शकुन्तला की साधारण वेषभूषा पर वे कहते हैं कि कमल सेवार के बीच में रहकर भी सुन्दर होता है, और चन्द्रमा का कलंक मलिन होने पर भी उसकी सुन्दरता बढ़ाता है, उसी प्रकार शकुन्तला बल्कल धारण करने पर भी सुन्दर लगती है। मधुर आकृतियों के लिए किसी अलंकार की आवश्यकता नहीं होती।

भारतीय परम्परा में इस नाटक के चतुर्थ अंक को और उसके भी चार श्लोकों को श्रेष्ठ बतलाया गया है। जर्मन महाकवि गेटे ने इस नाटक की बहुत प्रशंसा की है कि बसन्त का पुष्प और ग्रीष्म का फल यदि एक साथ देखना हो, तो शकुन्तला में देखें। मानव-जीवन के मार्मिक पक्षों का निरूपण इसमें बहुत कुशलता से हुआ है।

3. शारिपुत्रप्रकरण

इसके लेखक अश्वघोष (प्रथम शताब्दी ई.) हैं। यह रूपक नौ अंकों में लिखा गया था। इसके कुछ अंश ताल-पत्रों पर मध्य एशिया में मिले हैं। इन पत्रों को संकलित करके प्रो. ल्यूडर्स ने वर्तमान शताब्दी के आरंभ में जर्मनी में इनका प्रकाशन किया था। इसमें शारिपुत्र और मौद्गलायन के द्वारा बौद्ध-धर्म स्वीकार किए जाने की कथा है। आंशिक रूप से प्राप्त होने के कारण इसके कथानक का पूरा ज्ञान तो नहीं मिलता, किन्तु इसके विदूषक का प्राकृत-प्रयोग, छन्दों का प्रयोग, नाटक का अंकों में विभाजन इत्यादि तत्त्व संस्कृत नाट्य-विज्ञान के विकास का संकेत देते हैं। इस नाटक के साथ दो अन्य नाटकों के भी खण्डित अंश मिले थे। कुछ आधुनिक विद्वान इन्हें भी शारिपुत्रप्रकरण का ही अंश मानते हैं। इसमें कीर्ति, धृति आदि प्रतीकात्मक

पात्रों का सर्वप्रथम प्रयोग है। अश्वघोष के इस नाटक में शैली का संयम उनके महाकाव्यों के समान ही मिलता है।

4. मृच्छकटिक

शूद्रक-रचित मृच्छकटिक 10 अंकों का रूपक है, जिसे प्रकरण नामक भेद में रखा जाता है। प्रकरण में कथावस्तु कल्पित और सामाजिक होती है, राजकीय वातावरण से यह दूर रहती है। भास के चारुदत्त नामक नाटक को ही शूद्रक ने परिवर्धित करके इसकी रचना की। इसमें चारुदत्त नामक व्यापारजीवी ब्राह्मण नायक है, जो उदारता के कारण निर्धन हो गया है। इसकी नायिका वसन्तसेना है, जो उज्जयिनी की प्रसिद्ध गणिका है। वह चारुदत्त से प्रेम करती है। उसके प्रेम में राजा का साला शकार विरोध करता है। वह वसन्तसेना का गला दबा देता है और हत्या के आरोप में चारुदत्त को न्यायालय में पहुँचा देता है, किन्तु वसन्तसेना मरती नहीं। इसी बीच राजविप्लव होता है और पालक के स्थान पर आर्यक राजा बनता है। चारुदत्त को दी गई मृत्यु-दण्ड की सजा समाप्त हो जाती है और रूपक की सुखात्मक परिणति होती है।

चारुदत्त का पुत्र मिट्टी की गाड़ी के लिए रोता है। उसे वसन्तसेना अपने आभूषण दे देती है। मिट्टी की गाड़ी का कथानक के विकास में मुख्य योगदान होने से इस रूपक का नाम मृच्छकटिक (मृत्-मिट्टी, शकटिक-खिलौने की गाड़ी) पड़ा है। यह प्रकरण विशुद्ध सामाजिक कथावस्तु पर आश्रित है। इसलिए किसी नगर के राजपथ पर दैनिक घटनाओं का इसमें पूरा चित्र मिलता है। इसमें चारुदत्त जैसा चरित्रवान पात्र है, जिसके गुणों पर मुग्ध होकर वसन्तसेना जैसी गणिका अपने धन्धे को छोड़ देती है। दूसरी ओर इसमें शकार जैसा खलनायक भी है, जो राजा का साला होने के कारण अहंकारी है और दुष्टता करता रहता है। इसमें जुआ खेलने वाले जुआरी, घर में काम करने वाली दासी, राजतन्त्र की दुर्गति करने वाला राजा, चोरी करके अपनी प्रेमिका को आभूषण देने वाला प्रेमी, मित्र की निर्धनता में साथ देने वाला हास्य-पात्र विदूषक, पतिव्रता धूता (चारुदत्त की पत्नी), धन से अधिक सद्गुणों की पूजा करने वाली गणिका वसन्तसेना– इस प्रकार अनेक पात्र हैं, जो इस प्रकरण में रोचकता और रोमांच उत्पन्न करते हैं। अपने युग के समाज और संस्कृति को यह प्रकरण सजीव रूप में उपस्थित करता है।

मृच्छकटिक के लेखक शूद्रक के व्यक्तित्व और काल के विषय में बहुत विवाद है। इसकी प्रस्तावना में शूद्रक के राज्य करने और उसकी मृत्यु का भी उल्लेख है। निश्चित रूप से यह प्रस्तावना बाद में जोड़ी गई है। शूद्रक को कुछ लोग काल्पनिक पात्र मानते हैं। सामान्यतः तीसरी-चौथी शताब्दी ई. के उज्जैन का चित्र अंकित होने के कारण मृच्छकटिक की रचना इस काल में मानी जा सकती है।

5. मुद्राराक्षस

यह विशाखदत्त-रचित 7 अंकों का नाटक है, जो राजनीतिक कथानक से संबद्ध है। इसकी कथावस्तु मौर्य-वंश की स्थापना से जुड़ी है। विशाखदत्त का समय पाँचवीं-छठी शताब्दी माना जाता है। लेखक राजनीति तथा अनेक शास्त्रों का महान् पण्डित था। इस नाटक में चाणक्य के द्वारा नन्द-राजाओं के विध्वंस का वर्णन किया गया है। इसके बाद चन्द्रगुप्त मौर्य को पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठाया जाता है। चाणक्य स्वयं राजनीति से संन्यास लेना चाहता है। इसलिए वह नन्दों के भूतपूर्व मन्त्री राक्षस को चन्द्रगुप्त का प्रधानमन्त्री बनाने का प्रयत्न करता है किन्तु राक्षस नन्दों के प्रति स्वामिभक्ति रखता है। वह न चाणक्य को देखना चाहता है न चन्द्रगुप्त को। वह मलयकेतु नामक राजा के साथ मिलकर चन्द्रगुप्त को राज्यच्युत करने की योजना बनाता है। इसलिए चाणक्य का काम बहुत कठिन है, फिर भी वह अपनी कूटनीति से राक्षस को असहाय बना देता है, मित्रों से उसे पृथक् कर देता है और अन्ततः राक्षस चन्द्रगुप्त का मन्त्री-पद स्वीकार करने के लिए विवश हो जाता है। चाणक्य की कूटनीति में सर्वाधिक सहायता राक्षस की मुद्रा (मुहर देने वाली अँगूठी) से मिलती है, जो संयोगवश चाणक्य के हाथ लग जाती है। यह मुद्रा ही राक्षस की पराजय का कारण बनती है। इसके आधार पर नाटक का नामकरण हुआ है।

इस नाटक में चाणक्य और राक्षस की कूटनीतियों का संघर्ष दिखाया गया है। यह परम्परा से हटकर लिखा गया नाटक है, क्योंकि इसमें न कोई नायिका है और न शृङ्गार रस ही है। यहाँ राजनीतिक संघर्ष की शुष्क क्रीड़ा है, जहाँ दो कुचक्री राजनीतिज्ञ भिड़े हुए हैं। राक्षस की पराजय इसलिए होती है कि वह भावुक और स्वामिभक्त है। चाणक्य उसकी योग्यता पर मुग्ध है।

इसीलिए स्वयं प्रधानमंत्री न बनकर वह राक्षस को ही इस पद पर बैठाने के लिए प्रयत्न करता है। संस्कृत के सभी नाटकों की अपेक्षा कथानक की सुव्यवस्थित अन्विति में यह नाटक आगे है। घटनाएँ योजना के अनुसार चलती हैं। उनमें विलक्षण सजावट है। अन्त में राक्षस का मन्त्रीपद स्वीकार करना सभी के लिए लाभदायक होता है, पाटलिपुत्र का राज्य, योग्य राजा और योग्य मन्त्री पाकर दृढ़ होता है। इस प्रकार चाणक्य का त्याग और राष्ट्रभक्ति भी इसमें प्रदर्शित है।

6. हर्ष के रूपक

राजा हर्ष या हर्षवर्धन का समय सातवीं शताब्दी ई. का पूर्वार्द्ध है। ये स्थाण्वीश्वर के प्रसिद्ध राजा थे। उन्होंने बाण, मयूर आदि कवियों को आश्रय दिया था। ये इतिहास-प्रसिद्ध राजा थे। इनके समय में चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत आया था। इन्होंने तीन रूपक लिखे, जिनमें दो नाटिकाएँ हैं– प्रियदर्शिका और रत्नावली। एक नाटक है– नागानन्द।

प्रियदर्शिका और रत्नावली एक ही प्रकार की कथावस्तु पर आश्रित नाटिकाएँ हैं। प्रत्येक में 4-4 अंक हैं। दोनों के नायक उदयन हैं। दोनों में महारानी पृथक्-पृथक् हैं। प्रियदर्शिका में उसका नाम आरण्यका है, जो बाद में प्रियदर्शिका कही जाती है। राजा उदयन महारानी के भय से छिप-छिपकर नायिका से मिलता है। नायिका राजप्रासाद में ही शरणागत के रूप में रहती है। विदूषक राजा के प्रेम-व्यापार में सहायक होता है।

- **रत्नावली** : इस नाटिका की नायिका सागरिका है, क्योंकि उसकी रक्षा सागर से की गई थी। यही बाद में रत्नावली कही जाती है। उदयन का चरित्र धीरललित नायक का है, जो निश्चिन्त, कला-प्रेमी तथा सुखजीवी है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रियदर्शिका नाटिका का संशोधन करने के लिए हर्ष ने रत्नावली की रचना की थी। दोनों पर कालिदास के मालविकाग्निमित्र का बहुत प्रभाव है।
- **नागानन्द** : यह दोनों से कथानक और प्रभाव में भिन्न है। यह जीमूतवाहन की कथा से सम्बद्ध है। इसमें 5 अंक हैं। इसके पूर्वार्द्ध में जीमूतवाहन और मलयवती की प्रेम-कथा का वर्णन है, किन्तु उत्तरार्द्ध में जीमूतवाहन के आत्मत्याग की कथा है। वह गरुड़ से नाग की रक्षा

करता है और शंखचूड़ के स्थान पर स्वयं गरुड़ का भक्ष्य बनता है। गरुड़ उसके त्याग से प्रसन्न होकर सभी नागों को जीवित कर देते हैं। इस प्रकार यह महायान बौद्धधर्म के आदर्श के अनुकूल बोधिसत्त्व की कथा को नाटक के रूप में प्रस्तुत करता है। मानव-जाति को अहिंसा की शिक्षा देना इसका उद्देश्य है। यह नाटक हर्ष ने उस समय लिखा था, जब वे बौद्ध मत स्वीकार कर चुके थे। बौद्धों के बीच इस नाटक का बहुत प्रचार रहा है। नाटक दुःखान्त रूप धारण कर लेता, किन्तु गौरी देवी के दिव्य प्रसाद की कथा के समावेश से सुखान्त बन जाता है। हर्ष ने अपने रूपकों को सरल भाषा में प्रसादगुण से युक्त शैली में लिखा है। उन्होंने जहाँ नाटिकाओं में शृङ्गार रस की धारा बहायी है, वहाँ नागानन्द में शान्त रस को मुख्य रस रखा है। कला और कथानक की दृष्टि से उत्कृष्ट न होने पर भी ऐतिहासिक दृष्टि से हर्ष के रूपकों का महत्त्व है। नाट्य-संविधान की दृष्टि से रत्नावली बहुत महत्त्व रखती है, क्योंकि इसके उदाहरण काव्यशास्त्र के आचार्यों ने प्रचुर मात्रा में दिए हैं।

7. भवभूति के नाटक

भवभूति कालिदास के बाद दूसरे उत्कृष्ट नाटककार माने जाते हैं। सभी नाटककारों की अपेक्षा उन्होंने अपने विषय में अधिक सूचना दी है। वे विदर्भ-प्रदेश में पापुर के निवासी थे। वे यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के अध्येता ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न हुए थे। उनका दूसरा नाम श्रीकण्ठ था। उनका समय 700 ई. के आसपास माना जाता है। भवभूति कई शास्त्रों के पण्डित तथा अद्भुत शैलीकार थे। इन्होंने तीन रूपक लिखे जिनमें **महावीरचरित** और **उत्तररामचरित** राम की कथा पर आश्रित नाटक हैं, **मालतीमाधव** प्रकरण है।

- **महावीरचरित** : इसमें सीता-विवाह से आरम्भ करके राज्याभिषेक तक राम के जीवन की घटनाएँ सात अंकों में वर्णित हैं। इसका प्रमुख विषय है राम को नष्ट करने के लिए किये गये रावण के प्रयत्नों की विफलता तथा राम का सकुशल अयोध्या लौट आना। नाटक की कथावस्तु राम-रावण के बीच राजनीतिक षड्यन्त्र के आधार पर विकसित हुई है। इसमें रावण का मन्त्री माल्यवान् महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। रावण का राम

के प्रति क्रोध तभी से है, जब उसे सीता और जनक द्वारा सीता के वर के रूप में अस्वीकार कर दिया गया था। अन्य राक्षसों के वध से रावण बौखला उठता है। परशुराम और बालि की कथाएँ राम को नष्ट करने की माल्यवान् की योजना का अंश हैं। राम को वनवास दिलाने में मन्थरा वेश में शूर्पणखा कैकेयी के पास जाती है। यह भी भवभूति की कल्पना है। अन्त में रावण और माल्यवान् की युद्धनीति विफल हो जाती है। इस नाटक में भवभूति नाटककार से अधिक कवि के रूप में प्रकट होते हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के प्रभाव में रहकर भवभूति ने इसकी रचना की है। इसलिए राजनीतिक षड्यन्त्र और नाट्यकला में सामंजस्य नहीं रह पाया है।

- **मालतीमाधव** : यह 10 अंकों का एक प्रकरण है। इसमें भूरिवसु की पुत्री मालती तथा देवरात के पुत्र माधव के विवाह की मुख्य कथा है। दोनों के विवाह का निश्चय उनके पिताओं ने तभी कर लिया था, जब वे स्वयं विद्यार्थी थे, किन्तु वे अपनी योजना कार्यान्वित नहीं कर सके थे। कारण यह था कि भूरिवसु जिस राजा का मन्त्री था, वह राजा मालती का विवाह अपने चचेरे भाई नन्दन के साथ कराना चाहता था। इसलिए कामन्दकी नामक योगिनी को मालती और माधव के विवाह का भार दिया जाता है। इसके साथ-साथ मकरन्द और मदयन्तिका का प्रेम-प्रसंग भी चलता है। यहाँ मुख्य प्रेमी गौण हो गए हैं और गौण प्रेमी अधिक रोचक हो गए हैं। मालती का अपहरण कापालिकों के द्वारा किया जाता है और अघोरघण्ट नामक कापालिक देवी को मालती की बलि देने की तैयारी करता है। संयोगवश माधव अघोरघण्ट को मारकर मालती को बचा लेता है। उन दोनों का गुप्त विवाह हो जाता है। उधर मकरन्द का मालती के वेश में नन्दन से विवाह कराया जाता है, जिससे नाटक में हास्य-तत्त्व की सृष्टि होती है।

भवभूति इस नाटक की रचना में कामशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र के प्रभाव में थे। इसीलिए उन्होंने प्रेम की सभी सूक्ष्म अवस्थाओं का वर्णन किया है तथा विभिन्न रसों के परिपाक का भी प्रयास किया है। इस नाटक में शृङ्गार मुख्य रस है, किन्तु भयानक, अद्भुत, रौद्र आदि रस भी यथेष्ट हैं। श्मशान, तान्त्रिक साधना आदि का निरूपण इसमें बहुत रोचक और काव्यात्मक है।

- **उत्तररामचरित** : यह भवभूति का सर्वश्रेष्ठ नाटक है (उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते)। इसमें राम के उत्तरवर्ती जीवन के करुण पक्ष का नाट्य-रूप प्रस्तुत किया गया है। इसमें 7 अंक हैं। रावण को मारकर जब राम अयोध्या लौटते हैं, तब उनके सुख के दिन क्षणिक रूप में आते हैं, क्योंकि वे गुप्तचर से सीता के विषय में लोकापवाद सुनते हैं। राम के आदेश से लक्ष्मण सीता को गंगा-तट पर वन में छोड़ देते हैं। सीता गर्भवती है। वह वाल्मीकि के आश्रम में पहुँच जाती है, जहाँ उसे कुश और लव दो पुत्र होते हैं। राम सीता के त्याग से भीतर-ही-भीतर घुटते रहते हैं, किन्तु अपने दुःख को प्रकट नहीं कर पाते। शम्बूक का वध करने के लिए वे दण्डकारण्य पहुँचते हैं, जहाँ पंचवटी को देखकर वे विह्वल हो उठते हैं। भवभूति ने इस नाटक के तृतीय अंक में छाया-दृश्य की योजना की है, जिसमें सीता अदृश्य होकर राम को देखती है। राम का भीतरी भाव यहाँ मुक्त रूप से प्रकट होता है। राम अयोध्या में अश्वमेध-यज्ञ करते हैं। यज्ञ का अश्व भ्रमण करते हुए वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचता है, जहाँ लव उसे पकड़ लेता है। लक्ष्मण का पुत्र चन्द्रकेतु अश्वरक्षक है, इसलिए लव से उसका युद्ध होता है। लव जृम्भास्त्र का प्रयोग करता है, जिससे राम की सेना सो जाती है। राम स्वयं युद्धभूमि में आकर अपने पुत्रों को पहचानते हैं। सप्तम अंक में अयोध्या में वाल्मीकि-रचित रामविषयक नाटक का अभिनय होता है, जिसमें सीता के परित्याग के बाद की घटनाएँ दिखाई जाती हैं। नाटक के बीच नाटक का यह प्रयोग गर्भनाटक कहलाता है। इसमें सीता को लोकापवाद से मुक्त करके राम से मिला दिया जाता है। इस प्रकार नाटक की सुखद परिणति होती है।

इस नाटक में भवभूति ने नाट्य तथा काव्य का अद्भुत सामंजस्य दिखाया है। इस नाटक का कथानक करुण रस से भरा है। इसमें निम्न कोटि का हास्य बिल्कुल नहीं है। अभिज्ञानशाकुन्तल में जहाँ आनन्द और सौन्दर्य का वातावरण है, वहाँ उत्तररामचरित गम्भीर और कारुणिक वातावरण प्रस्तुत करता है। इसलिए इस नाटक में वर्णित प्रकृति भी भयावह और विस्मय उत्पन्न करने वाली है। गम्भीरता, आध्यात्मिकता और दाम्पत्य-प्रेम की उदात्तता में भवभूति अद्वितीय हैं।

अपने तीन रूपकों में भवभूति एक योजना के अनुसार काम करते हैं। महावीरचरित जहाँ जीवन के प्रथम चरण से सम्बद्ध नायक और नायिका को चुनकर वीर-रस को मुख्य रस बनाता है, वहाँ मालतीमाधव नायक-नायिका और शृङ्गार-रस को मुख्यता देता है। उत्तररामचरित में नायक-नायिका की प्रौढ़ावस्था के कारण करुण-रस को चुना गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण जीवन को उन्होंने तीन नाटकों में व्यवस्थित किया है।

8. वेणीसंहार

इसके लेखक भट्टनारायण हैं। इनका समय सातवीं या आठवीं शताब्दी ई. है। भट्टनारायण बंगाल के राजा आदिशूर के द्वारा निमन्त्रित पाँच कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में से एक थे। वेणीसंहार 6 अंकों का वीररस-प्रधान नाटक है। इसका कथानक महाभारत पर आश्रित है। दुश्शासन द्वारा हाथों से घसीटकर द्यूतभवन में लाई गई द्रौपदी की वेणी (केश) का दुर्योधनवध के बाद भीम द्वारा रक्त-रंजित हाथों से बाँधा जाना इस नाटक का मुख्य कथानक है, जिससे इसका नामकरण भी हुआ है। भीम ने प्रतिज्ञा की थी कि जिस वेणी को दुःशासन ने खींचा है, उसे उसी के रक्त से रंजित हाथों से मैं बाँधूंगा। बहुत बड़ा कथानक हो जाने से कहीं-कहीं इसका स्वरूप कथात्मक हो गया है। भीम, द्रौपदी, कर्ण तथा अश्वत्थामा के चरित्र-चित्रण में भट्टनारायण बहुत सफल हुए हैं। नाटक के बीच में दुर्योधन और भानुमती के प्रेम का दृश्य बहुत प्रभावपूर्ण है, किन्तु विद्वानों ने नाटक के वीररस-प्रधान वातावरण में इसे अनुचित कहा है।

कथानक के संयोजन में नाटककार कोई योगदान नहीं कर सका है, किन्तु कुछ रोचक और प्रभावपूर्ण दृश्य उसने अवश्य दिए हैं। भट्टनारायण की शैली ओजगुण से परिपूर्ण गौड़ी है, जिसमें लम्बे समास भरे हैं। वीर-रस-प्रधान होने के कारण इसकी बहुत प्रसिद्धि है। नाट्यशास्त्रियों ने इससे बहुत उद्धरण दिए हैं।

9. अन्य नाटक

संस्कृत भाषा में लिखे गए नाटकों की संख्या 1000 से कम नहीं। इसमें प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। रूपकों के विभिन्न भेदों की रचना संस्कृत में होती रही है। इस प्रकार प्रकरण, भाण, प्रहसन, व्यायोग इत्यादि

विविध रूपकों का लेखन होता रहा है। सर्वाधिक प्रचलित रूपक नाटक ही है। संस्कृत में कुछ नाटक प्रतीकात्मक भी हैं, जो भावात्मक विषयों को (जैसे– मोह, काम, क्रोध, विवेक, शान्ति, भक्ति) पात्र बनाकर लिखे गए हैं। ऐसे नाटकों में कृष्णमिश्र का (11वीं शताब्दी ई.) **प्रबोधचन्द्रोदय**, यशपाल (13वीं शताब्दी ई.) का **मोहमुद्गर**, वेदान्तदेशिक (14वीं शताब्दी ई.) का **संकल्पसूर्योदय**, कर्णपूर (16वीं शताब्दी) का **चैतन्यचन्द्रोदय** इत्यादि प्रमुख हैं।

भट्टनारायण के बाद जितने नाटककार हुए, उन्होंने प्रायः लक्षण-ग्रन्थों के आधार पर नाटक लिखे। इससे इस विधा का स्वाभाविक विकास समाप्त हो गया। ऐसे नाटककारों में मुरारि (रचना– **अनर्घराघव**), दामोदर मिश्र (रचना– **हनुमन्नाटक**), राजशेखर (रचनाएँ– **बालरामायण, बालभारत, कर्पूरमञ्जरी** तथा **विद्धशालभञ्जिका,** समय-900 ई.) इत्यादि प्रमुख हैं।

प्राचीन काल के चार भाणों का एक संग्रह मद्रास से 1922 ई. में प्रकाशित हुआ था। इसमें शूद्रक का **पद्मप्राभृतक**, वररुचि की **उभयाभिसारिका**, ईश्वरदत्त का **धूर्त्तविटसंवाद** तथा श्यामिलक का **पादताडितक**– ये भाण थे। इनमें समाज के निम्न वर्ग का सजीव और रोचक चित्रण है। सातवीं शताब्दी के पल्लव-नरेश महेन्द्रविक्रम का **मत्तविलासप्रहसन** तात्कालिक धार्मिक पाखण्ड का वर्णन करता है। बारहवीं शताब्दी ई. के वत्सराज ने छह प्रकार के रूपकों की रचना की थी। ये हैं– **किरातार्जुनीय** (व्यायोग), **रुक्मिणीहरण** (ईहामृग), **त्रिपुरदाह** (डिम), **समुद्रमन्थन** (समवकार), **कर्पूरचरित** (भाण) तथा **हास्यचूडामणि** (प्रहसन)। इसी प्रकार विभिन्न युगों में विभिन्न प्रकार के रूपक लिखे गए।

आधुनिक काल में संस्कृत नाटकों के कथानक में विविधता पाई जाती है। महापुरुषों की जीवनी, प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाएँ, राजनीतिक व्यवस्थाएँ, सामाजिक कुरीतियाँ इत्यादि विविध विषयों के कथानक नाटकों में लिए जाते हैं।

सारांश

दृश्य-काव्य को रूपक भी कहा जाता है। रूपक दस प्रकार के माने गए हैं, जिनमें 'नाटक' सबसे प्रमुख है। नाट्य, रूपक और नाटक का प्रयोग प्रायः समान अर्थ में किया जाता है।

नाटकों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने अनेक सिद्धान्त दिए हैं, जिनमें पुत्तलिका-नृत्य, धार्मिक नृत्य, वीर-पूजा, यूनानी प्रभाव इत्यादि प्रमुख हैं। आचार्य भरत ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में नाटकों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पौराणिक मत को स्वीकार किया है। इनके अनुसार ब्रह्मा ने नाट्य-वेद को उत्पन्न किया और शिव तथा पार्वती ने इसे समृद्ध किया। यह मानना उचित नहीं है कि संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति में विदेशी प्रभाव है।

भरत के नाट्यशास्त्र में रूपकों से सम्बद्ध पर्याप्त विवरण मिलता है। भरत का समय 100 ई. पू. से 300 ई. तक के बीच में माना जाता है।

भास के नाटक : भास द्वारा रचित 13 नाटक प्राप्त होते हैं, जिन्हें खोज निकालने का श्रेय टी. गणपति शास्त्री को है। भास कालिदास से पूर्व हुए है। उनकी रचनाओं को चार भागों में बाँटा जा सकता है :

(क) रामायण पर आश्रित - 1. प्रतिमा और 2. अभिषेक

(ख) महाभारत पर आश्रित - 1. बालचरित, 2. पंचरात्र, 3. मध्यमव्यायोग 4. दूतवाक्य 5. दूतघटोत्कच, 6. कर्णभार और 7. ऊरुभंग

(ग) उदयन की कथा पर आश्रित - 1. स्वप्नवासवदत्त और 2. प्रतिज्ञायौगन्धरायण

(घ) कल्पित रूपक - 1. अविमारक और 2. चारुदत्त।

भास के नाटकों की भाषा सरल और रोचक है। इनमें तत्कालीन समाज का विस्तृत चित्रण है।

- **कालिदास के नाटक** : कालिदास ने तीन नाटक लिखे हैं— मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञानशाकुन्तल। मालविकाग्निमित्र एक ऐतिहासिक कथानक से सम्बद्ध है, जिसमें शुंगवंशीय राजा अग्निमित्र का दासी वेश में रहने वाली विदर्भराजकुमारी मालविका के प्रति प्रेम का वर्णन है। इसमें पाँच अंक हैं। यह कालिदास का पहला नाटक है।

विक्रमोर्वशीय कालिदास का दूसरा नाटक है, जिसमें राजा पुरूरवा और अप्सरा उर्वशी की प्रेम-कथा का वर्णन है। इसमें पाँच अंक हैं।

अभिज्ञानशाकुन्तल कालिदास का अमर नाटक है। इसमें राजा दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रेम-कथा चित्रित है। इसमें सात अंक हैं। इस नाटक में कालिदास की नाट्यकला अन्तिम शिखर पर पहुँची है। इस नाटक के चतुर्थ अंक को और उसमें भी चार श्लोकों को श्रेष्ठ बतलाया जाता है।

- ***शारिपुत्र-प्रकरण*** : *इसके लेखक अश्वघोष (प्रथम शताब्दी ई.) हैं। यह रूपक नौ अंकों में लिखा गया था। इसका कुछ अंश मध्य एशिया में मिला है। इसमें शारिपुत्र और मौद्गल्यायन के द्वारा बौद्ध-धर्म स्वीकार किए जाने की कथा है। इस नाटक के साथ उनके दो अन्य नाटक भी खंडित रूप में मिले हैं।*
- ***मृच्छकटिक*** : *शूद्रकरचित मृच्छकटिक दस अंकों का रूपक है, जिसे प्रकरण के अंतर्गत रखा जाता है। प्रकरण में कथावस्तु कल्पित और सामाजिक होती है। भास द्वारा रचित चारुदत्त नाटक को ही परिवर्धित करके शूद्रक ने मृच्छकटिक की रचना की है। शूद्रक के स्थान और समय के विषय में काफी विवाद है। विद्वानों ने इन्हें तीसरी-चौथी शताब्दी ई. का माना है।*
- ***मुद्राराक्षस*** : *यह विशाखदत्त रचित सात अंकों का नाटक है। इसमें चाणक्य और चन्द्रगुप्त तथा उनके प्रतिपक्षी राक्षस की राजनीति को आधार बनाया गया है। राक्षस की मुद्रा (अंगूठी) चाणक्य को मिल जाती है, जो राक्षस की पराजय का कारण बनती है।*
- ***हर्ष के रूपक*** : *राजा हर्ष या हर्षवर्द्धन का समय सातवीं शताब्दी ई. का पूर्वार्द्ध है। ये स्थाण्वीश्वर के राजा थे। इन्होंने बाण, मयूर आदि कवियों को आश्रय दिया था। इन्होंने तीन रूपक लिखे थे, जिनमें दो नाटिकाएँ हैं– प्रियदर्शिका और रत्नावली तथा एक नाटक है– नागानन्द।*

प्रियदर्शिका और रत्नावली एक ही प्रकार की कथावस्तु पर आश्रित नाटिकाएँ हैं। प्रत्येक में चार अंक हैं। दोनों के नायक उदयन हैं। प्रियदर्शिका में नायिका का नाम प्रियदर्शिका है और रत्नावली में नायिका सागरिका है, जिसे रत्नावली भी कहा गया है।

नागानन्द नाटक में पाँच अंक हैं, जिसमें जीमूतवाहन की कथा है। नाटक के पूर्वार्ध में जीमूतवाहन के आत्म-त्याग की कथा है। इस नाटक का प्रमुख उद्देश्य है मानव जाति को अहिंसा की शिक्षा देना। यह नाटक बौद्ध धर्म से प्रभावित है।

- ***भवभूति के नाटक*** : *कालिदास के बाद भवभूति दूसरे उत्कृष्ट नाटककार माने जाते हैं। वे विदर्भ में पापुर के निवासी थे। इसका समय 700 ई. के आसपास माना जाता है। उन्होंने तीन रूपक लिखे हैं, जिनमें महावीरचरित और उत्तररामचरित राम की कथा पर आश्रित नाटक हैं और मालतीमाधव प्रकरण है।*

महावीरचरित में राम का सीता के साथ विवाह से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा है। इसमें सात अंक हैं।

मालतीमाधव दस अंकों का प्रकरण है। इसमें भूरिवसु की पुत्री मालती और देवरात के पुत्र माधव के विवाह की कथा वर्णित है।

उत्तररामचरित भवभूति का श्रेष्ठ नाटक है। इसमें राम के जीवन के उत्तर पक्ष को रखा गया है, जिसमें करुण रस की प्रधानता है।

- ***वेणीसंहार** : इसके लेखक भट्टनारायण हैं। इनका समय सातवीं-आठवीं शताब्दी है। ये बंगाल के थे। वेणीसंहार छह अंकों का वीररस-प्रधान नाटक है, जिसका आधार महाभारत है। इसमें भीम अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार दुश्शासन के रक्त से द्रौपदी की वेणी (केश) का संहार (गूँथने का कार्य) करते हैं।*
- ***अन्य नाटक** : संस्कृत भाषा में लिखे गए नाटकों की संख्या एक हजार से कम नहीं है। प्रतीक को आधार बनाकर लिखे गए नाटकों में कृष्ण मिश्र (11वीं शताब्दी ई.) का प्रबोधचन्द्रोदय, यशपाल (13वीं शताब्दी ई.) का मोहमुद्गर, वेदान्त-देशिक (14वीं शताब्दी ई.) का संकल्पसूर्योदय, कर्णपूर (16वीं शताब्दी ई.) का चैतन्यचन्द्रोदय आदि प्रमुख हैं।*

आधुनिक काल में भी अनेक संस्कृत नाटक लिखे जा रहे हैं, जिनमें महापुरुषों की जीवनी, ऐतिहासिक घटनाओं और राजनीतिक विषयों की प्रधानता है।

अभ्यास-प्रश्न

1. रूपक किसे कहते हैं? उसके भेदों का उल्लेख कीजिए।
2. रूपकों में नाटक का स्थान बताइए।
3. संस्कृत नाटक का उद्भव कैसे हुआ?
4. नाट्यशास्त्र का लेखक कौन है?
5. रूपकों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भरतमुनि ने क्या कहा है?
6. शारिपुत्रप्रकरण को किस कथा के आधार पर लिखा गया?
7. भास के सर्वाधिक प्रसिद्ध नाटक का नाम लिखिए।
8. मृच्छकटिक किस प्रकार का रूपक माना जाता है? उसकी कथावस्तु का आधार क्या है?
9. कालिदास ने कितने नाटक लिखे हैं? उनके नाम लिखिए।
10. कालिदास का कौन-सा नाटक सारे संसार में प्रसिद्ध है और क्यों?
11. मुद्राराक्षस नाटक की रचना किसने की? इसमें किन पात्रों के बीच संघर्ष हुआ?
12. अन्य नाटकों और मुद्राराक्षस में क्या अन्तर है?

13. भवभूति कौन थे? उनकी प्रसिद्धि का कारण बताइए।
14. उत्तररामचरित में क्या वर्णन किया गया है? उसमें कितने अंक हैं?
15. टिप्पणी लिखिए–
    (क) गर्भनाटक
    (ख) लव और कुश
    (ग) चंद्रकेतु
    (घ) वाल्मीकि
16. हर्षवर्द्धन की सभा में कौन-कौन कवि थे?
17. प्रियदर्शिका और रत्नावली नाटिकाएँ किसने लिखीं?
18. भट्टनारायण किस समय में हुए? उनका कौन-सा नाटक प्रसिद्ध है?
19. नीचे लिखे नाटकों के लेखकों के नाम लिखिए–
    (क) प्रबोधचन्द्रोदय
    (ख) मोहमुद्गर
    (ग) प्रियदर्शिका
    (घ) अनर्घराघव
    (ङ) संकल्पसूर्योदय
    (च) हनुमन्नाटक
20. राजशेखर की रचनाएँ कौन-कौन सी हैं?
21. वत्सराज ने कितने प्रकार के रूपकों की रचना की थी?
22. आधुनिक संस्कृत नाटकों के कथानक किन विषयों पर आधारित हैं? स्पष्ट कीजिए।

एकादश अध्याय

आधुनिक संस्कृत साहित्यधारा

संस्कृत साहित्य की धारा अनवरत रूप से आज तक प्रवाहित होती रही है, किंतु साहित्य के इतिहासकारों ने प्रायः सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी तक की साहित्यिक कृतियों को ही अपने इतिहासग्रन्थों में स्थान देकर आधुनिक संस्कृत साहित्य के प्रति उदासीनता प्रकट की है। इधर कुछ वर्षों से इस जड़ता को दूर करने का प्रयास लेखकों ने आरम्भ किया है।

विगत एक सौ वर्षों की अवधि में संस्कृत साहित्य की सभी प्राचीन विधाओं के अतिरिक्त पाश्चात्य साहित्य में प्रमुख विधाओं से भी प्रभावित साहित्य की रचना पर्याप्त परिमाण में हुई है। संपूर्ण भारत में विभिन्न विद्वानों तथा कवियों ने संस्कृत के सर्वाङ्गपूर्ण विकास की दृष्टि से सहस्राधिक ग्रन्थों की रचना की है, जिनमें अनेक कृतियाँ प्रकाशित हैं। उन पर समीक्षाग्रन्थ भी आधुनिक भाषाओं में लिखे गए हैं। यहाँ संस्कृत की मौलिक साहित्यिक कृतियों तथा उनके लेखकों का सामान्य निर्देश किया जा रहा है।

- **अर्वाचीन महाकाव्य :** साहित्यिक विधाओं में महाकाव्य रचना सबसे अधिक हुई है। न केवल प्राचीन कथानकों पर अपितु आधुनिक घटनाओं, महापुरुषों तथा ऐतिहासिक विषयों पर भी संस्कृत महाकाव्य प्राचीन लक्षणों का ध्यान रखते हुए लिखे गए हैं। उमापति द्विवेदीकृत पारिजातहरण, प्रभुनाथशास्त्रीकृत गणपतिसम्भव, कृष्णप्रसादशर्माकृत श्रीकृष्णचरितामृत, विन्ध्येश्वरीप्रसादकृत कर्णार्जुनीय, वसन्त त्र्यम्बक शेवडेकृत शुम्भवध, काशीनाथ द्विवेदीकृत रुक्मिणीहरण, रेवाप्रसादद्विवेदीकृत सीताचरित, राजेन्द्रमिश्रकृत वामनावतरण तथा जानकीजीवन इत्यादि प्राचीन कथाओं पर आधुनिक दृष्टिकोण से रचे गए महाकाव्य हैं।

अन्य कथानकों पर आश्रित महाकाव्यों में श्रीधर भास्कर वर्णेकरकृत शिवराज्योदय, उमाशंकर त्रिपाठीकृत छत्रपतिचरित, माधव श्रीहरिअणेकृत तिलकयशोऽर्णव, सत्यव्रतशास्त्रीकृत बोधिसत्त्वचरित, इन्दिरागान्धिचरित तथा रामकीर्ति महाकाव्य, विश्वनाथ केशव छत्रेकृत सुभाषचरित, ब्रह्मानन्दशुक्लकृत नेहरूचरित, साधुशरणमिश्रकृत गान्धिचरित, पद्मशास्त्रीकृत लेनिनामृत, रेवाप्रसाद द्विवेदीकृत स्वातन्त्र्यसम्भव, वसन्त त्र्यम्बकशर्माकृत स्वामिविवेकानन्दचरित, रामकुबेर मालवीयकृत मालवीयचरित, हरिहरप्रसाद द्विवेदीकृत गोस्वामितुलसीदासचरित, द्विजेन्द्रनाथ शास्त्रीकृत स्वराज्यविजय, शिवगोविन्द त्रिपाठीकृत गान्धिगौरव, अमीरचन्द्रशास्त्री कृत नेहरूचरित इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

- **खण्डकाव्य** : आधुनिक युग में अपेक्षाकृत लघुकाव्य तथा गीत्यात्मक काव्य भी पर्याप्त रूप से लिखे गए हैं। संस्कृत पत्रिकाओं में प्रकाशित प्रकीर्ण काव्यों की संख्या भी निरंतर प्रवर्धमान है। कुछ गीतों तथा काव्यों में नवीन दृष्टि तथा छंद के बन्धन को निरस्त करने की प्रवृत्ति भी प्राप्त होती है, फिर भी अधिसंख्यक कवि प्राचीन छंदों तथा गीतों के रूप में ही संस्कृत रचनाएं करते हैं, भाव की दृष्टि से उनमें प्रत्यग्रता तथा नवीनता अवश्य रहती है। ऐसे काव्यों में विषयवस्तु का वैविध्य दिखाई पड़ता है।

आधुनिक खण्डकाव्यों में प्रभुदत्तशास्त्रीकृत धन्वन्तरिजन्मामृत, रामकीर्तिकौस्तुभ, क्षमारावकृत सत्याग्रहगीता, सत्यव्रत शास्त्रीकृत गुरुगोविन्दसिंहचरित, थाइदेशविलास, शर्मण्यदेशः सुतरां विभाति (जर्मनी की यात्रा का वर्णन), वृहत्तरभारत इत्यादि वर्णेकर रचित भारतरत्नशतक, रामकृष्णपरमहंसीय, स्वातन्त्र्यवीरशतक इत्यादि, जगन्नाथ पाठककृत कापिशायनी, आर्यासहस्राराम, रामकरणशर्माकृत संध्या, बटुकनाथ शास्त्रीकृत कल्लोलिनी, शिवजी उपाध्यायकृत शक्तिशतक तथा कुम्भशतक, राधावल्लभ त्रिपाठीकृत वातायन, सन्धान तथा लहरीदशक, मेननकृत शारदादेवीचरित, श्रीदेवी कुट्टी ताम्पुराट्टिकृत नैषध, भामापरिणय तथा मधुरापुरी विजय इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक संस्कृत गीतिकारों में जानकी वल्लभ शास्त्री अपनी अभिनव दृष्टि के कारण विशेष उल्लेखनीय हैं। काकली (1935) इसकी गीतियों का सुन्दर संकलन हैं। इनका अन्य काव्य बन्दीमन्दिर कालिदास के मेघदूत की

भावदृष्टि से अनुप्राणित है। मेघदूत की अनुकृति पर दूतकाव्यों की रचना आधुनिक युग में भी पर्याप्त रूप से हुई है, जैसे– श्रीनारायणरथकृत कपोतदूत, राजगोपाल आयंगरकृत काकदूत, दयानिधिमिश्रकृत सूर्यदूत इत्यादि। पण्डित रामावतार शर्मा ने मेघदूत के विडम्बनाकाव्य (पैरोडी) के रूप में मुद्गरदूत की रचना 1910 ई. में की थी।

- **गद्यकाव्य** : आधुनिक गद्यकाव्य भाषाशैली की दृष्टि से कई धाराओं में विभक्त है। कुछ लेखक बाणभट्ट की पाञ्चाली शैली को अपना आदर्श मानते हैं, तो कुछ दण्डी की सरल तथा ललित पदावली में आस्था रखते हैं। कुछ लेखक सर्वथा अलंकार-रहित विशुद्धोक्ति का विन्यास करते हैं। सामान्यतः आधुनिक संस्कृत निबंधों में तथा कुछ लघुकथाओं में यही शैली मिलती है।

जहाँ तक गद्यकाव्य की विधाओं का प्रश्न है, इस विषय में आधुनिक संस्कृत गद्यलेखक पाश्चात्य साहित्यधारा से अधिक प्रभावित हैं। तदनुसार उपन्यास तथा लघुकथा-जैसी विधाएँ संस्कृत में भी बहुत लोकप्रिय हैं। कथा एवं आख्यायिका के रूप में जो प्राचीन गद्यविधाएँ थीं, वे प्रायः उपेक्षित हैं।

आधुनिक संस्कृत गद्यकाव्यों में पण्डित अम्बिकादत्त व्यास लिखित शिवराजविजय, क्षमा रावकृत कथामुक्तावली एवं विचित्रपरिषद्यात्रा, श्रीपाद हसूरकरकृत दावानल तथा सिन्धुकथा, मेधाव्रत रचित कुमुदिनीचन्द्र, श्रीकृष्ण गोस्वामिकृत उद्वेजिनी तथा आम्रपाली, केशवचन्द्रदाशकृत शीतलतृष्णा तथा प्रतिपाद, रामन पिल्लईकृत नलिनी, रामजी उपाध्यायकृत द्वासुपर्णा तथा पाथेय, रामशरण त्रिपाठी कृत कौमुदीकथाकल्लोलिनी (सिद्धांत कौमुदी के नियमों के उदाहरणों के रूप में रचित), रामकरण शर्माकृत सीमा इत्यादि प्रमुख हैं। संस्कृत लघुकथाओं के अनेक संकलन प्रकाशित हैं। इनमें साहित्य अकादमी दिल्ली से प्रकाशित संस्कृतलघुकथा-संग्रह में अनेक आधुनिक संस्कृत लेखकों की कहानियाँ (लघुकथाएँ) संकलित हैं।

- **आधुनिक नाट्य रचनाएँ** : आधुनिक संस्कृत साहित्यकारों ने विपुल मात्रा में संस्कृत नाट्यकृतियों की रचनाएँ की हैं। बहुत-सी रचनाओं का अभिनय भी विभिन्न विशिष्ट अवसरों पर होता रहता है। कुछ नाट्यकृतियाँ इसी उद्देश्य से लिखी गई हैं। इनमें कहीं-कहीं आधुनिक सामाजिक समस्याओं का भी चित्रण किया गया है। कुछ नाटकों की रचना

आधुनिक तथा मध्यकालीन महापुरुषों के जीवनचरित को लेकर की गई हैं। अनेक नाटक प्राचीन कथाओं को भी अभिनव दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। प्रमुख संस्कृत रूपकों में श्री लक्ष्मणसूरिकृत दिल्लीसाम्राज्य, घोषयात्राडिम, पद्मनाभकृत त्रिपुरविजय, माधवकृत सुभद्राहरण, मथुराप्रसाददीक्षितकृत वीरप्रताप, शंकरविजय, गान्धिविजय, भारतीविजय, हरिदाससिद्धान्तवागीशकृत मेवाड़प्रताप, बंगीयप्रताप, शिवाजीचरित, रामजीउपाध्यायकृत सीताभ्युदय, रेवाप्रसादद्विवेदीकृत अशोकविजय, वासुदेवद्विवेदीकृत भोजराजसंस्कृतसाम्राज्य, राजेन्द्रमिश्रकृत प्रमद्वरा, विद्योत्तमा, राधावल्लभत्रिपाठीकृत प्रेमपीयूष, तण्डुलप्रस्थीय, प्रेक्षणसप्तक (एकांकी) आदि हैं। भट्टाचार्यकृत धरित्रीपति निर्वाचन (राजनीति की मूल्यहीनता पर आधारित), वीरेन्द्रकुमारभट्टाचार्यकृत शार्दूलशकट, वेष्टनव्यायोग (घेराव और हड़ताल पर आश्रित), लक्षणव्यायोग (नक्सलवाद का चित्रण), शरणार्थिसंवाद (बांग्लादेशीयशरणर्थीसमस्या पर) तथा शिवजी उपाध्यायकृत यौतक (दहेजपर आधारित), स्वातन्त्र्यशौर्य, प्रतिभापलायन, कालकूट (ड्रग्स पर) विषयवस्तु की नवीनता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। कुछ लेखकों ने बहुत अधिक संख्या में एकांकी नाटक, प्रहसन इत्यादि के द्वारा संस्कृत नाट्यसाहित्य को समृद्ध किया है। उदाहरणार्थ राजेन्द्रमिश्र ने लगभग पचहत्तर एकांकी लिखे हैं। हास्य-व्यंग्य-प्रधान प्रहसनों में वेंकटाचलम्कृत विकटकवि, के.के.आर. नायरकृत आलस्यकर्मीय, बटुकनाथ शर्मा कृत पाण्डित्यताण्डव, मधुसूदनकृत पण्डितचरितप्रहसन, महालिङ्गशास्त्रीकृत मर्कटमर्दलिका इत्यादि प्रमुख हैं। संस्कृत नाटकों की प्रस्तुति आकाशवाणी तथा दूरदर्शन जैसे संचार साधनों के द्वारा निरंतर होती रहती है। आद्य शंकराचार्य तथा भगवद्गीता जैसे पूर्ण चलचित्रों का संस्कृत में निर्माण करके संस्कृत की जनप्रियता की सिद्धि श्री जी. वी. नैयर ने सम्यक् रूप से की है।

इस प्रकार संस्कृत साहित्य की सर्जनधारा आधुनिक युग में भी प्रवाहित होती रही है। भविष्य में भी संस्कृत रचनाएँ होती रहेंगी, ऐसा विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है।

सारांश

संस्कृत साहित्य की धारा अनवरत रूप से अद्यावधि प्रवाहित है। विगत सौ वर्षों में संपूर्ण भारत में संस्कृत साहित्य की सभी प्राचीन तथा अधुनातन विधाओं, महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, गीतिकाव्य, गद्य, उपन्यास, लघुकथा, नाटक, एकांकी, प्रहसन आदि पर विपुल मात्रा में रचनाएं हुई हैं तथा उन पर समीक्षा ग्रन्थ भी लिखे गए हैं।

- ***अर्वाचीन महाकाव्य** : प्रायः प्राचीन कथानकों, आधुनिक घटनाओं, महापुरुषों के जीवन तथा ऐतिहासिक विषय-वस्तु पर आधारित है। इनमें प्रमुख रूप से उमापति द्विवेदी का पारिजातहरण, प्रभुनाथशास्त्रीकृत गणपतिसम्भव, काशीनाथ द्विवेदी का रुक्मिणीहरण, रेवाप्रसादद्विवेदीकृत सीताचरित, राजेन्द्रमिश्रकृत वामनावतरण, जानकीजीवन, श्रीधरवर्णेकरकृत शिवराज्योदय, माधवश्री हरिअणे कृत तिलकयशोऽर्णव, सत्यव्रतशास्त्रीकृत बोधिसत्त्वचरित, इन्दिरागान्धिचरित आदि उल्लेखनीय हैं।*
- ***खण्डकाव्य** : आधुनिक युग में रचित लघुकाय गीत्यात्मक काव्य प्रकीर्ण काव्य आदि में विषयवस्तु का तथा शैली का वैविध्य है तथा नवीन दृष्टि एवं छंद बंधन से मुक्ति की प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर होती है। इनमें जानकी वल्लभ शास्त्री का काकली गीतिसंकलन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मेघदूत की अनुकृति पर दूतकाव्यों की रचना भी आधुनिक युग में हुई है।*
- ***गद्यकाव्य** : आधुनिक गद्यसाहित्य में पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप उपन्यास तथा लघुकथाएँ जैसी विधाएँ अधिक लोकप्रिय हैं। लघुकथाओं के अनेक संकलन प्रकाशित हैं। गद्यकाव्यों में पं. अम्बिकादत्त व्यासकृत शिवराजविजय, क्षमारावकृत कथामुक्तावली, विचित्रपरिषद्यात्रा, श्रीपादहरसूकरकृत दावानल, रामशरणत्रिपाठीकृत कौमुदीकथाकल्लोलिनी, रामकरणशर्माकृत सीमा इत्यादि प्रमुख हैं।*
- ***आधुनिक गद्यरचनाएँ** : आधुनिक नाट्यसाहित्य का बहुविशाल तथा वैविध्यपूर्ण परिदृश्य है। ये नाटक अनेक प्रकार से लिखे गए हैं तथा प्राचीन कथानकों की विषयवस्तु को अभिनव दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। समकालीन सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी अनेक नाटकों में किया गया है। आधुनिक तथा मध्यकालीन महापुरुषों के जीवन चरित को लेकर अनेक नाटकों की रचना की गई है।*

आदिशंकराचार्य तथा भगवद्गीता जैसे पूर्ण चलचित्रों का निर्माण भी संस्कृत में किया गया है, इस प्रकार संस्कृत साहित्य की सर्जनधारा आधुनिक युग में भी निरंतर प्रवाहित है।

अभ्यास-प्रश्न

1. नीचे लिखी रचनाओं के लेखकों के नाम लिखिए–
   (क) पारिजातहरण
   (ख) श्रीकृष्णचरितामृत
   (ग) रुक्मिणीहरण
   (घ) सीताचरित
   (ङ) जानकीजीवन
2. नीचे लिखी रचनाओं की काव्यविधा को लिखिए–
   (क) वामनावतरण
   (ख) गणपतिसम्भव
   (ग) बोधिसत्त्वचरितं
   (घ) सन्ध्या
   (ङ) कुम्भशतक
3. गद्यकाव्य और लेखकों को मिलाइए–

गद्यकाव्य	*लेखक*
कथामुक्तावली	रामकरण शर्मा
दावानल	रामशरण त्रिपाठी
नलिनी	क्षमाराव
कौमुदीकथाकल्लोलिनी	रामनपिल्लई
सीमा	श्रीपादहसूरकर

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–
   (क) रेवा प्रसाद द्विवेदीकृत .... महाकाव्य है।
   (ख) संस्कृत लघुकथासंग्रह .... से प्रकाशित है।
   (ग) शार्दूलशकट वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्यकृत .... है।
   (घ) राधावल्लभ त्रिपाठीकृत .... नाटक है
   (ङ) प्रमद्वरा नाटक .... रचित है।

5. नीचे लिखे लेखकों की रचनाओं के नाम लिखिए–
शिवजी उपाध्याय
रामावतार शर्मा
जानकी वल्लभ शास्त्री
बटुकनाथ शास्त्री
राजेन्द्रमिश्र
6. संस्कृत चलचित्रों का नामोल्लेख कीजिए।

द्वादश अध्याय

शास्त्रीय साहित्य

वैदिक वाङ्मय को ठीक-ठीक समझने के लिए अत्यंत प्राचीनकाल में ही व्याकरण, ज्योतिष, गणित जैसे शास्त्रों का विकास हुआ। इसी प्रकार वैदिक साहित्य में बिखरे हुए विभिन्न विचारों में धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, दर्शनशास्त्र, काव्य-शास्त्र, वास्तुशास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र विकसित हुए। ये शास्त्र विभिन्न युगों में अपने समय की आवश्यकता के अनुसार विभिन्न विभागों में बँट गए और इन शास्त्रों से सम्बद्ध अनेक ग्रन्थ लिखे गए और इन पर टीकाएँ भी लिखी गईं। टीकाओं में मूल ग्रंथों के भावों को समझने के अतिरिक्त नई बातें भी आईं। कुछ टीकाएँ संक्षिप्त थीं तो कुछ बहुत विस्तृत भाष्यों के रूप में थीं। इसी प्रकार विभिन्न शास्त्रों में ग्रंथों की संख्या बढ़ गई। किसी भी एक शास्त्र के सभी ग्रंथों को पढ़ पाना भी किसी व्यक्ति के लिए आसान नहीं है। इसी से शास्त्रीय साहित्य की विशालता समझी जा सकती है।

शास्त्रीय साहित्य का विकास वस्तुतः वैदिक युग से ही आरंभ होता है। वैदिक मंत्रों का शुद्ध उच्चारण करके उन्हें सही अर्थों में समझने के लिए तीन विभिन्न शास्त्रों का जन्म हुआ– **शिक्षा, व्याकरण** तथा **निरुक्त**। वैदिक युग में ये तीनों शास्त्र पृथक्-पृथक् प्रचलित थे, किंतु लौकिक संस्कृत के युग में ये तीनों व्याकरण में ही समाविष्ट हो गए। इससे व्याकरण शास्त्र का क्षेत्र बढ़ गया।

वैदिक यज्ञों में वेदिका तथा यज्ञशाला के निर्माण के क्रम में गणित तथा भवन-विज्ञान (वास्तुशास्त्र) का उद्भव हुआ। अथर्ववेद में चिकित्सा से सम्बद्ध बहुत से संकेत मिलते हैं। परवर्ती युग में उनका विकास आयुर्वेद के रूप में हुआ।

वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर जनसामान्य के सामाजिक और धर्म-संबंधी विचार व्यक्त किए गए थे। उनका संकलन करके धर्मशास्त्र बनाया गया। ऋग्वेद और अथर्ववेद में जो दार्शनिक चिंतन पाए जाते हैं, उनका विकास उपनिषदों में हुआ और यही चिन्तन आगे चलकर दर्शनशास्त्र के रूप में उभरा। दर्शनशास्त्र मीमांसा, वेदान्त, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक– इन छह आस्तिक तथा चार्वाक, जैन एवं बौद्ध– इन नास्तिक दर्शनों के रूप में विकसित हुआ।

वेदों में नर-नारी के प्रेम को कई रूपों में निर्दिष्ट किया गया है। इन विचारों से कामशास्त्र का विकास हुआ। वैदिक काव्य में अलंकारों के प्रयोगों का विवेचन करने के लिए काव्यशास्त्र का आविर्भाव हुआ। राजनीति का विवेचन यद्यपि पहले धर्म-शास्त्र के अंग के रूप में होता था, किंतु बाद में यह अर्थशास्त्र के नाम से पृथक् शास्त्र बन गया। इस प्रकार संस्कृत भाषा में अनेक शास्त्र विकसित हुए।

आरम्भिक अवस्था में ये शास्त्र इधर-उधर बिखरे हुए थे, किंतु कालक्रम से इन्हें ग्रंथों के रूप में व्यवस्थित किया गया। शास्त्रों के अध्ययन की समृद्ध परम्परा भारतवर्ष में रही है। यही हमारा प्राचीन विज्ञान है, दर्शन है और भारतीय मेधा का उत्कर्ष है। अपने शास्त्रीय साहित्य पर आज भी संस्कृत वाङ्मय को गर्व है।

प्रमुख शास्त्रीय ग्रन्थों का परिचय

1. **शब्दकोश विज्ञान** : वैदिक युग से ही शब्दकोश-निर्माण की पद्धति चलती आ रही है। वैदिक शब्दों के संग्रह को निघण्टु कहा जाता है। इसमें पर्यायवाची शब्दों का संकलन रहता है। समय-समय पर विविध कोशों की रचना भारत में होती रही। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध **नामलिङ्गानुशासन** है, जो कोशकार अमरसिंह के नाम पर *अमरकोश* के नाम से अधिक विख्यात है। इसकी रचना प्रायः तीसरी शताब्दी ई. में हुई थी। इस ग्रन्थ में तीन काण्ड हैं, जिनमें वैज्ञानिक ढंग से वर्गीकरण करके पर्यायवाची शब्दों का श्लोकबद्ध संग्रह किया गया है। यद्यपि बाद में भी हलायुध की **अभिधानरत्नमाला**, यादव प्रकाश की **वैजयन्ती**, महेश्वर का **विश्वप्रकाश**, हेमचन्द्र की **अभिधानचिन्तामणि** आदि कोश-ग्रन्थ

लिखे गए, किन्तु अमरकोश का महत्त्व आज भी अक्षुण्ण है। इस पर प्राय चालीस टीकाएँ लिखी गईं।

आधुनिक युग में वर्णमाला के क्रम से शब्दों को सजाकर दो महान् कोश लिखे गए, जिनमें तारानाथ तर्कवाचस्पति के द्वारा संकलित **वाचस्पत्य** तथा राधाकान्तदेव द्वारा प्रस्तुत कराया गया **शब्दकल्पद्रुम** विशेष उल्लेखनीय है। ये पाँच-पाँच खंडों में प्रकाशित हैं।

2. **छन्दःशास्त्र :** इस शास्त्र का प्राचीनतम ग्रन्थ पिंगलाचार्य के द्वारा लिखित छन्दः सूत्र है। इसमें वैदिक और लौकिक दोनों प्रकार के छंदों के नियम सूत्र रूप में लिए गए हैं। क्षेमेन्द्र ने सुवृत्ततिलक नामक लघु पुस्तक में छन्दों के पद्यबद्ध लक्षण दिए हैं, जो उदाहरण का काम भी करते हैं। इन्होंने संस्कृत के विभिन्न कवियों के द्वारा प्रयुक्त कई छंदों की प्रशंसा भी की है। केदारभट्ट (15 वीं शताब्दी ई.) का **वृत्तरत्नाकर** तथा गंगादासकृत **छन्दोमञ्जरी** छन्दःशास्त्र के अन्य सुप्रचलित ग्रंथ हैं।
3. **व्याकरणशास्त्र :** वैदिक साहित्य में शब्दों के उच्चारण, प्रकृति-प्रत्यय के रूप में शब्दों का विभाजन, वचन, काल आदि के विषय में कई स्थलों पर विवेचन है। इससे व्याकरणशास्त्र का विकास हुआ। यद्यपि शाकटायन, शौनक, शाकल्य, स्फोटायन इत्यादि कई व्याकरणशास्त्री हुए, किंतु आज सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रंथ पाणिनि की **अष्टाध्यायी** ही है। आठ अध्यायों में पाणिनि ने लौकिक संस्कृत और वैदिक भाषा से सम्बद्ध प्रायः 4000 सूत्र लिखे हैं। इस ग्रंथ में दोनों भाषाओं का सर्वाङ्गपूर्ण विवरण दिया गया है। पाणिनि के सूत्र अत्यंत संक्षिप्त हैं, किन्तु व्यापक रूप से संस्कृत भाषा के नियमों को प्रस्तुत करते हैं। पाणिनि का समय प्रायः 500 ई. पू. माना जाता है। इन सूत्रों पर संक्षिप्त टिप्पणियों के रूप में वार्तिक लिखने वाले कात्यायन (350 ई. पू.) हुए, जिन्होंने कहीं-कहीं सूत्रों में दिए गए नियमों को आगे बढ़ाया और कहीं उनमें संशोधन का सुझाव दिया। इसके बाद पतञ्जलि (150 ई. पू.) हुए, जिन्होंने पाणिनि के सूत्र और कात्यायन के वार्तिक दोनों पर संयुक्त रूप से **महाभाष्य** नामक आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखा। इन तीनों आचार्यों को समुदित रूप से व्याकरणशास्त्र में **त्रिमुनि** अथवा **मुनित्रय** कहा जाता है।

अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य पर अनेक व्याख्याएँ लिखी गईं, इनमें वामन और जयादित्य की **काशिकावृत्ति** अष्टाध्यायी की श्रेष्ठ व्याख्या के रूप में प्रसिद्ध है। कुछ समय के बाद पाणिनि के सूत्रों को सरलता की दृष्टि से नए रूप में व्यवस्थित करके प्रक्रियाग्रंथ लिखे गए, जिनमें रामचन्द्र (1400 ई.) की **प्रक्रियाकौमुदी** और भट्टोजिदीक्षित (1600 ई.) की **सिद्धान्तकौमुदी** प्रसिद्ध है। पाणिनीय व्याकरण में प्रवेश के लिए वरदराजकृत **लघुसिद्धांतकौमुदी** जैसे सरल ग्रंथ भी लिखे गए। सिद्धांतकौमुदी पर टीकाओं का प्राचुर्य है जिनका अध्ययन नव्य व्याकरण के अंतर्गत होता है।

पाणिनीय व्याकरण के अंतर्गत कुछ दार्शनिक ग्रन्थ भी लिखे गए जिनमें भाषा के अर्थ-पक्ष या दर्शन पर विचार किया गया। इन ग्रंथों में भर्तृहरि (500 ई.) का **वाक्यपदीय**, कौण्डभट्ट (1650 ई.) का **वैयाकरणभूषणसार** तथा नागेशभट्ट (1700 ई.) की **वैयाकरणसिद्धांतलघुमञ्जूषा** प्रसिद्ध हैं।

पाणिनि के अतिरिक्त अन्य वैयाकरणों ने भी विभिन्न व्याकरण-सम्प्रदायों को चलाया। इनमें कातन्त्र, चान्द्र, शाकटायन, हैम, सारस्वत तथा सौपदम् सम्प्रदाय भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित हैं।

4. **धर्मशास्त्र** : आचार-व्यवहार की शिक्षा के लिए वैदिक धर्म-सूत्रों पर आश्रित अनेक स्मृतियाँ लिखी गईं। इनमें वर्णाश्रम-व्यवस्था, राजा के कर्त्तव्य, विवाद का निर्णय आदि विविध विषयों पर प्रकाश डाला गया है। यह सामान्य धारणा है कि स्मृतियाँ श्रुतियों अर्थात् वेदों का अनुसरण करती हैं। इन स्मृतियों के आधार पर ही हिंदुओं के दीवानी और फौजदारी कानून बने हुए हैं। यद्यपि प्राचीन स्मृतियों के बहुत से नियम आज अपना अर्थ और महत्त्व खो चुके हैं, तथापि आज भी भारतीय सामाजिक व्यवस्था मूलतः स्मृतियों पर आश्रित है। इसलिए स्मृतियों के अध्ययन की अपनी उपयोगिता है।

स्मृति-ग्रंथों में सर्वाधिक महत्त्व **मनुस्मृति** का है। इसका समय ईसा पूर्व ही है। इसमें बारह अध्याय हैं जिनमें श्लोकों में सभी स्मृतियों की अपेक्षा अधिक व्यापक विषय-वस्तु का प्रतिपादन है। सृष्टि से आरंभ करके मानव समाज के विकास तथा दैनिक जीवन के कर्त्तव्यों का विवेचन करते हुए मोक्ष तक का इसमें विवेचन है। मनु को सभी मानवों का पिता कहा गया है। उन्होंने जीवन की व्यवस्था के लिए अपने नियम दिए हैं।

याज्ञवल्क्यस्मृति (300 ई.) में अपेक्षाकृत अधिक प्रगतिशील विचार दिए गए हैं। इसमें तीन अध्याय हैं– **आचार, व्यवहार** और **प्रायश्चित्त**। इस पर मिताक्षरा व्याख्या सुप्रसिद्ध है, जिसे हिन्दुओं के कुछ वर्गों में सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता है। **नारदस्मृति, विष्णुस्मृति** आदि अन्य स्मृतियाँ हैं। धर्मशास्त्र के अंतर्गत स्मृतियों के अतिरिक्त निबन्ध-ग्रंथों की भी रचना हुई, जिनमें किसी धार्मिक व्यवस्था, अनुष्ठान, विवादग्रस्त विषय आदि का विवेचन हुआ। बारहवीं शताब्दी के बाद ऐसे अनेक निबन्ध लिखे गए। आधुनिक भारतीय कानूनों को अंग्रेजों ने इन निबन्धों के आधार पर ही बनाया था।

5. **राजनीतिशास्त्र** : प्राचीन भारत में राजनीति को भी बहुत महत्त्व दिया जाता था। कहते हैं कि सुव्यवस्थित राज्य में ही सभी शास्त्र पनपते हैं। इसलिए राज्य को सुदृढ़ करने के लिए राजनीतिशास्त्र से संबद्ध पर्याप्त चर्चा होती रही। महाभारत का शान्ति पर्व इस दृष्टि से बहुत महत्त्व का है। प्राचीन धर्मशास्त्री और स्मृतिकार भी राजनीति की विवेचना करते हैं, किंतु राजनीतिविषयक सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ कौटिल्य का **अर्थशास्त्र** है। इसके लेखक मौर्यवंश के प्रतिष्ठापक चाणक्य या कौटिल्य कहे जाते हैं। इसमें पन्द्रह अधिकरण हैं, जिन्हें अध्यायों में विभक्त किया गया है। सम्पूर्ण अर्थशास्त्र सूत्रात्मक है। कहीं-कहीं श्लोकों में सूत्र की बातें दोहराई गई हैं।

अर्थशास्त्र में राजा की शिक्षा, मंत्रियों की नियुक्ति, गुप्तचरों की नियुक्ति, विभिन्न विभागीय अधीक्षकों के कर्त्तव्य, राज्य के दुष्ट नागरिकों का दमन, कृत्रिम मूल्य-वृद्धि, मिलावट तथा गलत नाप-तोल को रोकने के उपाय, राज्य के सात अंग, शान्ति और उद्योग, शत्रु पर आक्रमण, युद्ध, दुर्ग का घेरा, विष-प्रयोग आदि अनेक विषयों का सांगोपांग वर्णन है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र को कठोर अनुशासनबद्ध राजतन्त्र की दृष्टि से लिखा है। राजा आंतरिक व्यवस्था रखे, प्रजा की रक्षा करे और युद्ध के लिए सदा तत्पर रहे। अर्थशास्त्र इस सिद्धांत को मानता है कि लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधनों का अच्छा-बुरा होना महत्त्वपूर्ण नहीं है। अर्थशास्त्र राजतरङ्गिणी के समान ही संस्कृत वाङ्मय का गौरव-ग्रंथ है।

6. **नीतिशास्त्र** : राजनीति के समान सामान्य व्यावहारिक नीति पर भी संस्कृत भाषा में कई ग्रंथ लिखे गए हैं। **कामन्दकीयनीतिसार** अर्थशास्त्र

के प्रमुख विषयों को श्लोकों में प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार सोमदेवसूरिकृत **नीतिवाक्यामृत** भी अर्थशास्त्र पर आश्रित है। **चाणक्यनीतिदर्पण** नीतिश्लोकों का अव्यवस्थित संग्रह है। भोज का **युक्तिकल्पतरु**, चण्डेश्वर का **नीतिरत्नाकर** और **शुक्रनीति** भी व्यावहारिक नीतिशास्त्र के प्रमुख ग्रंथ हैं।

7. **अन्य व्यावहारिक शास्त्र :** कौटिल्य के अर्थशास्त्र का संबंध अन्य छोटे-छोटे शास्त्रों के साथ भी है। इनमें एक धनुर्वेद है जिसे उपवेद माना गया है। इस विषय का एक ग्रंथ **कोदण्डमण्डन** मिलता है। शार्ङ्गधर की **वीरचिन्तामणि** में युद्ध-संबंधी विषयों पर विचार किया गया है। इसी प्रकार गजशास्त्र और अश्वशास्त्र पर भी कई ग्रंथ उपलब्ध हैं, जैसे– **मातंगलीला, अश्वायुर्वेद, अश्ववैद्यक** इत्यादि।

शिल्पशास्त्र अथवा वास्तुशास्त्र पर भी कुछ साहित्य मिलता है, जैसे– **मनुष्यालयचन्द्रिका** (सात अध्याय), **मयमत** (24 अध्याय), भोजकृत **समरांगण-सूत्रधार**, मण्डनरचित **वास्तुमण्डन** तथा **प्रासादमण्डन**। इनमें भवन-निर्माण की कला का विवरण प्राप्त होता है। **मानसार** में मूर्तिकला का वर्णन है। रत्नविज्ञान पर भी कई ग्रन्थ मिलते हैं, जैसे– बुद्धभट्ट की **रत्नपरीक्षा**, नारायण पण्डित की **नवरत्नपरीक्षा** इत्यादि। पाकशास्त्र पर **नलपाक** नामक ग्रन्थ है।

कुछ समय पूर्व महर्षि भरद्वाजकृत **यन्त्रसर्वस्व** नामक ग्रन्थ की प्राप्ति हुई है जिसमें विमानविद्या का विवरण है। रसायनशास्त्र का प्राचीन भारत में बहुत प्रचार था। नागार्जुन इस विद्या के बड़े आचार्य थे। **रसार्णव** तथा **रसरत्नसमुच्चय** नामक ग्रन्थों में खनिज-धातुओं से विविध रसों के निर्माण की विधियाँ वर्णित हैं। बौद्धों ने इस क्षेत्र में बहुत काम किया था। उन लोगों के तिब्बत और चीन चले जाने से भारत में क्रमशः विज्ञान और चिकित्साशास्त्र का ह्रास होता चला गया।

वनस्पति-विज्ञान का अध्ययन भी आयुर्वेद का क्षेत्र था। अनेक वृक्षों तथा पौधों के गुण-धर्म, उन्हें पहचानने के साधन आदि का विचार करने के लिए कई ग्रन्थ लिखे गए थे, जैसे– **वृक्षायुर्वेद, उपवनविनोद** आदि। संगीतशास्त्र में भी प्राचीन भारत ने बहुत प्रगति की थी। नाट्यशास्त्र के अतिरिक्त **संगीतमकरन्द, संगीतरत्नाकर** (शार्ङ्गदेवरचित), **संगीतदर्पण** (दामोदरकृत)

तथा **रागविबोध** इस विषय के प्रमुख ग्रन्थ हैं। नृत्य-शास्त्र पर भी **अभिनयदर्पण** (नन्दिकेश्वरकृत), **श्रीहस्तमुक्तावली** आदि ग्रन्थ हैं। चित्र-कला पर पृथक् प्रकरण **विष्णुधर्मोत्तर पुराण** में मिलता है।

कामशास्त्र के क्षेत्र में वात्स्यायन का **कामसूत्र** सुविख्यात ग्रन्थ है। इसका काल तीसरी शताब्दी ई. माना जाता है। इसमें गद्य-पद्य का मिश्रण है। इसमें सात खण्ड हैं, जिनमें प्रेम, विवाह, नायिका, वेश्या, प्रणय की सफलता के उपाय आदि अनेक विषयों का वर्णन है। तेरहवीं शताब्दी में इस पर यशोधर ने जयमंगला व्याख्या लिखी। इस शास्त्र के अन्य ग्रन्थ हैं– **रतिमंजरी, रतिरहस्य** तथा कल्याणमल्लकृत **अनंगरंग** इत्यादि।

8. **चिकित्साशास्त्र** : इसे आयुर्वेद कहा जाता है। बौद्ध-ग्रन्थों से पता चलता है कि राजगृह में जीवक नामक बहुत बड़ा वैद्य रहता था, जिसने बुद्ध की भी चिकित्सा की थी। संस्कृत भाषा में इस शास्त्र का प्राचीनतम ग्रन्थ **चरकसंहिता** है। इसमें आठ खण्ड और तीस अध्याय हैं। इसकी रचना प्रायः गद्य में है। इसमें शल्य-क्रिया को छोड़कर चिकित्सा के सभी विषयों का प्रतिपादन है। इसका समय प्रथम शताब्दी माना जाता है। इस शास्त्र का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ **सुश्रुत-संहिता** है, जिसमें शल्यक्रिया पर बहुत बल दिया गया है। इसमें शल्यक्रिया के उपकरणों का भी परिचय दिया गया है। दोनों ग्रन्थ सातवीं-आठवीं शताब्दी में अरबी भाषा में रूपांतरित हो चुके थे।

वाग्भट के दो चिकित्सा-ग्रन्थ मिलते हैं– **अष्टांगसंग्रह** और **अष्टांगहृदयसंहिता**। विद्वानों का मत है कि इन दोनों की रचना वाग्भट नाम के दो व्यक्तियों ने की थी, जो एक ही वंश में हुए थे। नागार्जुनकृत **योगसार**, शार्ङ्गधररचित **शार्ङ्गधरसंहिता** (13 वीं शताब्दी), भावमिश्ररचित **भावप्रकाश** इत्यादि इस शास्त्र के अन्य प्रमुख ग्रंथ हैं।

9. **ज्योतिष तथा गणित** : इस क्षेत्र में भारतीयों की उपलब्धि वैदिक युग से ही मिलती है। नक्षत्रों की गणना, ग्रहों का विचार, काल-गणना आदि के क्षेत्र में भारतीय ज्योतिषियों की अद्भुत क्षमता थी। 476 ई. में उत्पन्न आर्यभट ने 121 पद्यों में **आर्यभटीय** नामक ग्रंथ लिखा था। उन्होंने पृथ्वी का अपनी धुरी पर घूमना सिद्ध किया था। उनके ग्रहण-विषयक सिद्धांत आज भी मान्य हैं। वराहमिहिर ने प्रायः 550 ई. में ज्योतिषशास्त्र के

विभिन्न सिद्धांतों पर **पञ्चसिद्धांतिका** नामक ग्रंथ लिखा था। सातवीं शताब्दी में ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुटसिद्धांत** की रचना की। भास्कराचार्य (12 वीं शताब्दी) ने **सिद्धांत-शिरोमणि** नामक सिद्धांतग्रंथ के अतिरिक्त **लीलावती, बीजगणित, ग्रहगणित** तथा **गोल** नामक गणित-ग्रंथ लिखे। गणित के क्षेत्र में आर्यभट, ब्रह्मगुप्त तथा श्रीधर का भी महान् योगदान है।

फलित ज्योतिष के क्षेत्र में वराहमिहिर की **बृहत्संहिता, बृहज्जातक** और **लघुजातक** नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। **विद्यामाधवीय** तथा **ज्योतिर्विदाभरण** नामक ग्रन्थों में फलित ज्योतिष का विवेचन है। कुछ ज्योतिषियों ने शकुनविद्या, भविष्यफल, स्वप्नविज्ञान तथा सामुद्रिक शास्त्र के विषय में भी विभिन्न ग्रंथ लिखे।

10. **दर्शनशास्त्र** : ऋग्वेद में कई दार्शनिक सूक्त हैं, जिनमें संसार के मूल तत्त्व और सृष्टि-प्रक्रिया का विवरण मिलता है। बाद में उपनिषदों में इन्हीं विषयों का रोचक विवेचन किया गया। आत्मा, ब्रह्म, जगत्, मृत्यु, जीवन आदि की व्याख्या रोचक उपाख्यानों के द्वारा इनमें की गई। वैदिक साहित्य के बाद दार्शनिक धारा दो भागों में विभक्त हो गई। पहली धारा वैदिक परंपरा को आगे बढ़ाने वाली थी, जिसे आस्तिक कहा गया। दूसरी धारा वैदिक परम्परा के विरोध में चली, जिसे नास्तिक कहा गया।

नास्तिक दर्शन के तीन रूप मिलते हैं– चार्वाक, बौद्ध और जैन। चार्वाक पूर्णतः भौतिकबादी दर्शन है, जिसमें ईश्वर, धर्म, आत्मा, परलोक आदि सभी परोक्ष विषयों का खण्डन है। चार्वाक दर्शन का प्रचार बहुत हुआ, जिससे इसका नाम लोकायत भी पड़ा। बृहस्पति इस दर्शन के संस्थापक माने जाते हैं। इनका कोई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ नहीं मिलता। बौद्ध-धर्म महात्मा बुद्ध के द्वारा आरंभ हुआ। आरंभ में इसके ग्रन्थ पालि भाषा में लिखे गए, किंतु बाद में इसके ग्रन्थों में संस्कृत भाषा का प्रयोग होने लगा। तिब्बत, चीन, जापान श्रीलंका, थाइलैण्ड इत्यादि देशों में भी यह धर्म उन देशों की भाषाओं में विकसित हुआ। संस्कृत में महायान धर्म की महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी गईं। बौद्ध-धर्म और दर्शन की कई शाखाएँ हो गईं, जैसे– सर्वास्तिवाद, शून्यवाद, विज्ञानवाद आदि। **सद्धर्मपुण्डरीक, ललितविस्तर, लङ्कावतारसूत्र,**

माध्यमिककारिका, अभिधर्मकोश इत्यादि प्रमुख बौद्ध ग्रन्थ हैं, जो संस्कृत में लिखे गए। जैन-धर्म का विकास भी बौद्ध-धर्म के पूर्व ही हो चुका था। इसके अधिकांश ग्रन्थ प्राकृत में हैं, किन्तु बाद में संस्कृत में भी बहुत से जैन ग्रंथ लिखे गए। उमास्वामी (उमास्वाति) (100 ई.) का **तत्त्वार्थाधिगमसूत्र** प्रथम संस्कृत रचना है जिसमें जैनों के सिद्धांतों का सर्वाङ्गपूर्ण वर्णन है। जैनों ने संस्कृत भाषा में दर्शन, काव्य, व्याकरण, तथा अन्य क्षेत्रों में भी रचनाएँ कीं।

आस्तिक दर्शन के छह रूप मिलते हैं– मीमांसा, वेदान्त, न्याय, वैशेषिक, सांख्य और योग। इनमें प्रत्येक दर्शन का विशाल साहित्य उपलब्ध है।

मीमांसा का आरंभ जैमिनि के **मीमांसासूत्र** (12 अध्याय) से होता है। इस पर शबरस्वामी ने भाष्य लिखा। इस भाष्य पर प्रभाकर ने **बृहती** टीका लिखी। दूसरी ओर कुमारिल ने इसकी व्याख्या तीन पृथक् पुस्तकों में की। इनमें **श्लोकवार्तिक** और **तन्त्रवार्तिक** प्रसिद्ध हैं। प्रभाकर और कुमारिल ने मीमांसा में दो पृथक् संप्रदाय चलाए, जिनमें कई विषयों पर मतभेद है। मीमांसा-दर्शन मुख्यतः वैदिक वाक्यों पर आधारित धर्म की व्याख्या करता है। वैदिक ज्ञानकाण्ड पर आश्रित वेदान्त-दर्शन वस्तुतः उपनिषदों का तत्त्वचिंतन है, जिसे बादरायण ने अपने **ब्रह्मसूत्र** में निबद्ध किया। इस सूत्र पर शङ्कराचार्य ने अपना भाष्य लिखा, जिससे अद्वैतवेदान्त का विकास हुआ। शाङ्करभाष्य पर कई टीकाएँ लिखी गईं, जिनमें वाचस्पति की **भामती** नामक टीका विशेष उल्लेखनीय है। सदानन्द (17 वीं शताब्दी) का **वेदान्तसार** वेदान्त शास्त्र में प्रवेश कराने वाला एक सरल ग्रंथ है। ब्रह्मसूत्र पर अनेक आचार्यों ने अपनी व्याख्याएँ लिखकर अपने-अपने संप्रदाय चलाए। रामानुज (1100 ई.) ने श्रीभाष्य के द्वारा विशिष्टाद्वैत-संप्रदाय चलाया और विष्णु की भक्ति को प्रधानता दी। मध्वाचार्य ने द्वैत सिद्धांत और वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैतसिद्धांत का श्रीगणेश किया। वेदान्त के विभिन्न दार्शनिक विचारों को संकलित करके **योगवासिष्ठ** नामक ग्रंथ की रचना मनोहर काव्य शैली में की गई

न्यायदर्शन का प्रवर्तन गौतम ने **न्यायसूत्र** लिखकर किया, जिसपर वात्स्यायन ने **भाष्य** लिखा। इस भाष्य पर उद्योतकर ने **न्यायवार्तिक** लिखा। इस वार्तिक पर वाचस्पति मिश्र ने **तात्पर्यटीका** लिखी। इस टीका की व्याख्या उदयनाचार्य ने **परिशुद्धि** के नाम से लिखी। वस्तुतः टीका पर टीका

लिखने का यह क्रम बौद्ध न्याय-दर्शन के विरुद्ध संघर्ष के कारण चला। न्यायशास्त्र के सिद्धांतों का खण्डन बौद्ध लोग अपने ग्रन्थों में करते थे। इसलिए उनके आक्षेपों से रक्षा के लिए न्यायशास्त्रियों ने टीकाएँ लिखीं। जयन्तभट्ट ने **न्यायमञ्जरी** में न्यायसिद्धांत के विरोधी सभी सिद्धांतों का खंडन किया। गंगेश उपाध्याय (13 वीं शताब्दी) ने **तत्त्वचिन्तामणि** लिखकर न्यायशास्त्र को एक नया रूप दिया, जिसे नव्य न्याय कहते हैं। इस ग्रंथ पर व्याख्याओं का विपुल साहित्य लिखा गया। नव्य न्याय से सभी शास्त्रों को सूक्ष्म अभिव्यक्ति में सहायता मिली।

वैशेषिक दर्शन का प्रवर्तन कणाद ने किया। न्याय और वैशेषिक मिलते-जुलते दर्शन हैं। कणाद के वैशेषिक-सूत्र की व्याख्याएँ बाद में लिखी गईं, किंतु इस दर्शन में प्रशस्तपाद के **पदार्थधर्मसंग्रह** को अधिक महत्त्व मिला। इसकी व्याख्याओं के द्वारा इस दर्शन के सिद्धांत प्रचारित हुए। न्याय और वैशेषिक को मिलाकर कई ग्रंथ लिखे गए, जिसमें केशवमिश्र की **तर्कभाषा** और विश्वनाथ का **भाषापरिच्छेद** प्रमुख है। अन्नम्भट्ट का **तर्कसंग्रह** इन दर्शनों में प्रवेश के लिए सरलतम पुस्तक है।

सांख्यदर्शन का प्रवर्तन कपिल ने अपने **सांख्यसूत्र** में किया था। इस पर तेरहवीं शताब्दी ई. में विज्ञानभिक्षु ने **सांख्यप्रवचनभाष्य** लिखा। ईश्वरकृष्ण (300 ई.) की **सांख्यकारिका** सर्वाधिक प्रचलित ग्रंथ है। इस पर वाचस्पति ने **तत्त्वकौमुदी** टीका लिखी थी। सांख्य-दर्शन में पुरुष और प्रकृति का जो विवेचन किया गया है, उसे व्यावहारिक रूप देने के लिए पतञ्जलि ने **योगसूत्र** लिखा। इस पर व्यास का भाष्य और कई अन्य व्याख्याएँ भी मिलती हैं।

विभिन्न दर्शनों के सिद्धांतों का संग्रह तथा विवेचन करने वाले ग्रंथ भी समय-समय पर लिखे जाते रहे। इनमें हरिभद्र (8 वीं शताब्दी) का **षड्दर्शन-समुच्चय** तथा माधवाचार्य (14 वीं शताब्दी) का **सर्वदर्शनसंग्रह** बहुत प्रसिद्ध हैं।

11. **काव्यशास्त्र** : इसे अलंकारशास्त्र, साहित्यशास्त्र और काव्यमीमांसा भी कहते हैं, इसमें काव्य, नाटकादि के लक्षण, गुण, दोष, रीति, अलंकार, रस, ध्वनि तथा शब्दशक्ति पर विचार होता है। इस शास्त्र का विशाल साहित्य उपलब्ध है। इसमें पचासों मौलिक ग्रंथ लिखे गए हैं, टीकाओं की तो बात ही अलग है।

इस शास्त्र का प्राचीनतम ग्रंथ भरतमुनि का **नाट्यशास्त्र** है। यह ग्रन्थ मुख्यतः श्लोकबद्ध है। इसमें छत्तीस अध्याय हैं। मूलतः यह रूपकों का विचार करता है, किंतु श्रव्य-काव्य संबंधी बहुत-सी बातें भी इसमें मिलती हैं। उसकी रचना 300 ई. से पहले हो चुकी थी।

भामह (छठी शताब्दी) का **काव्यालंकार** छह परिच्छेदों में विभक्त है। पूरा ग्रंथ श्लोकबद्ध है। भामह अलंकारों पर बहुत बल देते हैं। दण्डी (छठी शताब्दी) ने तीन परिच्छेदों में **काव्यादर्श** नामक ग्रंथ लिखा, जिसमें उन्होंने काव्य के भेदों की परिभाषाएँ देकर अलंकारों की विवेचना की है। पूरा ग्रन्थ पद्यात्मक है।

वामन (800 ई.) ने **काव्यालंकारसूत्र** नामक ग्रन्थ में रीति को काव्य की आत्मा माना है। यह पाँच अधिकरणों का सूत्रात्मक ग्रंथ है। इसमें दोष, गुण, अलंकार तथा कतिपय विवादास्पद कविप्रयोगों का विवेचन है। आनन्दवर्धन (850 ई.) का **ध्वन्यालोक** काव्यशास्त्र के क्षेत्र में एक अनूठी रचना है, जिसमें ध्वनि या प्रतीयमान अर्थ को काव्य में महत्त्व दिया गया है और व्यंजना-शक्ति को पृथक् मान्यता दी गई है। इस ग्रंथ में चार उद्योत हैं। पूरा ग्रन्थ कारिका और उसकी वृत्ति के रूप में है। कुन्तक ने **वक्रोक्तिजीवित** में वक्रोक्ति सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इसमें चार उन्मेष हैं। राजशेखर की **काव्यमीमांसा** अठारह अध्यायों का ग्रंथ है। इसमें काव्य के निर्माता के व्यक्तित्व के विकास की विवेचना हुई है। कवियों के लिए इसमें व्यावहारिक नियम दिए गए हैं। महिमभट्ट का **व्यक्तिविवेक** आनन्दवर्धन की मान्यता की आलोचना करने के लिए लिखा गया था। धारानरेश भोज (1000 ई.) ने काव्य शास्त्र में **सरस्वतीकण्ठाभरण** तथा **शृङ्गारप्रकाश** नामक दीर्घकाय ग्रंथ लिखे। इसी काल में कश्मीर में अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र की टीका **अभिनवभारती** लिखी। मम्मट (12 वीं शताब्दी) ने **काव्यप्रकाश** लिखकर ध्वनि-विरोधियों का खंडन करते हुए काव्य का सर्वांगपूर्ण विवेचन किया। इस ग्रन्थ पर सर्वाधिक टीकाएँ लिखी गईं, जिनसे काव्यप्रकाश के प्रभाव और लोकप्रियता का पता चलता है।

विश्वनाथ (14वीं शताब्दी ई.) का **साहित्यदर्पण** काव्यप्रकाश से भी अधिक व्यापक रूप से काव्यशास्त्रीय विषयों का विवेचन करता है। इसमें नाट्य-शास्त्र को भी समाविष्ट किया गया है। जिस प्रकार काव्यप्रकाश में

दस उल्लास हैं, उसी प्रकार साहित्यदर्पण में दस परिच्छेद हैं। दोनों ग्रंथ कारिका और वृत्ति के रूप में लिखे गए हैं।

रूपगोस्वामी (15वीं शताब्दी) ने भक्तिरस को स्वतंत्र तथा महत्त्वपूर्ण रस सिद्ध करने के लिए दो विशाल ग्रन्थ लिखे– **भक्तिरसामृतसिन्धु** तथा **उज्ज्वलनीलमणि**।

जगन्नाथ (17वीं शताब्दी) का **रसगङ्गाधर** एक प्रकार से अंतिम साहित्यशास्त्रीय ग्रंथ हैं। इसमें काव्य की नई परिभाषा देकर प्राचीन परिभाषाओं की आलोचना की गई है। इस ग्रन्थ में जगन्नाथ ने अपने ही उदाहरण दिए हैं।

इस विवेचन से सिद्ध होता है कि विभिन्न शास्त्रों के क्षेत्र में भारतीय विद्वान् सभी युगों में योगदान करते रहे। उन्होंने ज्ञान और व्यवहार का कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं छोड़ा । साधारण व्यवहार की बात हो या गंभीर दार्शनिक चिंतन की सभी को सूक्ष्म नियमों के द्वारा प्रतिपादित किया गया। इससे संस्कृत साहित्य की व्यापकता सिद्ध होती है।

सारांश

शास्त्रीय साहित्य का विकास वैदिक युग से आरंभ होता है। मूलग्रंथ और टीकाग्रंथ के मिलने से शास्त्रीय साहित्य विशाल हो गया।

वैदिक मंत्रों का उच्चारण तथा सही अर्थों के लिए तीन विभिन्न शास्त्रों का जन्म हुआ– शिक्षा, व्याकरण तथा निरुक्त, किंतु लौकिक संस्कृत के युग में ये तीनों व्याकरण में ही समाविष्ट हो गए। वैदिकयज्ञों में वेदिका तथा यज्ञशाला में निर्माण के क्रम में गणित तथा भवनविज्ञान (वास्तुशास्त्र) का जन्म हुआ। अथर्ववेद में चिकित्सा से संबद्ध संकेतों के आधार पर आयुर्वेद का विकास हुआ। वैदिक साहित्य के समाज तथा धर्म-संबंधी विचारों का संकलन करके धर्मशास्त्र और ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के दार्शनिक चिंतनों से दर्शनशास्त्र का विकास हुआ। दर्शनशास्त्र मीमांसा, वेदान्त, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक इन छह रूपों में विकसित हुआ। इसी प्रकार वेदों से ही कामशास्त्र, काव्यशास्त्र और अर्थशास्त्र भी विकसित हुए।

- ***शब्दकोशविज्ञान** : वैदिक शब्दों के कोश को निघण्टु कहते हैं। संस्कृत का प्रसिद्धतम कोश अमरकोश है, जिसका समय तीसरी शताब्दी माना जाता है। बाद में हलायुध की अभिधानरत्नमाला, यादवप्रकाश की वैजयन्ती, महेश्वर का विश्वप्रकाश, हेमचन्द्र की अभिधानचिन्तामणि; तारानाथ तर्कवाचस्पति का वाचस्पत्य तथा राधाकान्तदेव का शब्दकल्पद्रुम आदि कोषग्रन्थ लिखे गए।*

- ***छन्दःशास्त्र*** : *पिंगलाचार्य के द्वारा लिखित छन्दःसूत्र इस शास्त्र का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसमें वैदिक और लौकिक दोनों प्रकार के छन्दों का विवेचन है। क्षेमेन्द्र ने सुवृत्ततिलक नामक लघु पुस्तक में छन्दों के पद्यबद्ध लक्षण दिए हैं, जो उदाहरण का काम भी करते हैं। केदारभट्ट (15 वीं शताब्दी ई.) कृत वृत्तरत्नाकर तथा गंगादासकृत छन्दोमञ्जरी छन्दःशास्त्र के सुप्रचलित ग्रन्थ हैं।*
- ***व्याकरणशास्त्र*** : *यद्यपि शाकटायन, शौनक, शाकल्य, स्फोटायन आदि अनेक वैयाकरण हुए, किंतु आज सर्वप्रथम उपलब्ध व्याकरण ग्रन्थ पाणिनि की अष्टाध्यायी ही है। आठ अध्यायों में पाणिनि ने संस्कृत और वैदिक भाषा से सम्बद्ध प्रायः 4000 सूत्र लिखे हैं। इनका समय 500 ई. पू. माना जाता है। पाणिनि, उनके सूत्रों के वार्त्तिककार कात्यायन (350 ई. पू.) और महाभाष्यकार (150 ई. पू.) पतञ्जलि– इन तीनों आचार्यों को व्याकरणशास्त्र में त्रिमुनि अथवा मुनित्रय कहा जाता है।*

  अष्टाध्यायी और महाभाष्य पर अनेक व्याख्याएँ लिखी गईं। इनमें वामन और जयादित्य की काशिकावृत्ति अष्टाध्यायी की श्रेष्ठ व्याख्या मानी जाती है। पाणिनि-व्याकरण से सम्बद्ध अनेक प्रक्रियाग्रन्थ लिखे गए, जिनमें रामचन्द्र की प्रक्रियाकौमुदी और भट्टोजिदीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी विशेष प्रसिद्ध हैं। पाणिनीय दार्शनिकग्रन्थों में भर्तृहरि (500 ई.) का वाक्यपदीय, कौण्डभट्ट (1650 ई.) का वैयाकरणभूषणसार तथा नागेशभट्ट (1700 ई.) की वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा प्रसिद्ध हैं।

  पाणिनि के अतिरिक्त कातन्त्र, चान्द्र, शाकटायन आदि व्याकरण सम्प्रदाय भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित हैं।
- ***धर्मशास्त्र*** : *धर्मशास्त्रों में वर्णाश्रम-व्यवस्था, राजा के कर्त्तव्य, विवाद का निर्णय आदि विविध विषयों पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार भारतीय सामाजिक व्यवस्था मूलतः स्मृतियों पर आश्रित है।*

  स्मृतिग्रन्थों में सर्वाधिक महत्त्व मनुस्मृति (200 ई. पू.) का है। इसमें बारह अध्याय हैं। इसके अतिरिक्त याज्ञवल्क्यस्मृति, नारदस्मृति, विष्णुस्मृति आदि अन्य स्मृतियाँ भी हैं।

  धर्मशास्त्र में स्मृतियों के अतिरिक्त निबंध ग्रन्थ भी हैं जिनमें धार्मिक व्यवस्था, अनुष्ठान, विवादग्रस्त विषय आदि का विवेचन है।
- ***राजनीतिशास्त्र*** : *राजनीति विषयक सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ कौटिल्य का अर्थशास्त्र हैं, इसमें राजा की शिक्षा, मंत्रियों की नियुक्ति आदि अनेक विषयों का सांगोपांग वर्णन है।*

- ***नीतिशास्त्र*** : *व्यावहारिक नीति पर संस्कृत भाषा में कई ग्रन्थ लिखे गए हैं। कामन्दकीयनीतिसार, नीतिवाक्यामृत, चाणक्यनीतिदर्पण, युक्तिकल्पतरु, नीतिरत्नाकर और शुक्रनीति, इस शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ हैं।*

  इसके अतिरिक्त धनुर्वेद, गजशास्त्र, अश्वशास्त्र, शिल्पशास्त्र, विमानविद्या, रसायनशास्त्र, वनस्पतिविज्ञान, संगीतशास्त्र आदि व्यावहारिक शास्त्र मिलते हैं।
- ***चिकित्साशास्त्र*** : *इस शास्त्र का प्राचीनतम ग्रन्थ चरकसंहिता है। इसमें आठ खण्ड और तीस अध्याय हैं। इसकी रचना प्रायः गद्य में है। इसमें शल्यक्रिया छोड़कर चिकित्सा के सभी विषय आए हैं। इसका समय प्रथम शताब्दी ई. माना जाता है। इसके अतिरिक्त सुश्रुतसंहिता, अष्टांगसंग्रह आदि इस शास्त्र के अन्य प्रमुख ग्रन्थ हैं।*
- ***ज्यौतिष तथा गणित*** : *इस शास्त्र का आर्यभटीय नामक ग्रन्थ आर्यभट (476 ई.) ने 121 पद्यों में लिखा था। इसके बाद इस शास्त्र में वराहमिहिर ने बृहत्संहिता, बृहज्जातक और लघुजातक नामक ग्रन्थ लिखे।*
- ***दर्शनशास्त्र*** : *वैदिकसाहित्य के बाद दार्शनिक धारा दो भागों में विभक्त हो गई– आस्तिक तथा नास्तिक। वैदिक परम्परा को आगे बढ़ाने वाली धारा आस्तिक और उसका विरोध करने वाली धारा नास्तिक कही गई।*

  नास्तिक दर्शन के तीन रूप मिलते हैं– चार्वाक, बौद्ध और जैन। चार्वाक भौतिकवादी दर्शन है, जिसमें ईश्वर, धर्म, आत्मा, परलोक आदि सभी परोक्ष विषयों का खण्डन है। इस दर्शन को लोकायत दर्शन भी कहा जाता है। बृहस्पति इस दर्शन के संस्थापक माने जाते हैं।

  बौद्ध-धर्म महात्मा बुद्ध के द्वारा आरंभ हुआ। इस धर्म से सम्बद्ध दर्शन की कई शाखाएँ हो गईं, जैसे– सर्वास्तिवाद, शून्यवाद, विज्ञानवाद आदि। इस धर्म का विकास छठी शताब्दी (ई.) में हुआ।

  जैन धर्म का विकास बहुत पहले ही हुआ। जैन धर्म के ग्रन्थ प्राकृत तथा संस्कृत भाषा में मिलते हैं। उमास्वामी (100 ई.) का तत्त्वार्थाधिगमसूत्र जैन दर्शन की प्रथम संस्कृत रचना है।

  आस्तिक दर्शन के छह रूप मिलते हैं– मीमांसा, वेदान्त, न्याय, वैशेषिक, सांख्य और योग। इन दर्शनों के प्रवर्तक क्रमशः जैमिनि, बादरायण, गौतम, कणाद, कपिल और पतञ्जलि थे। इन में प्रत्येक दर्शन का विशाल साहित्य उपलब्ध है।
- ***काव्यशास्त्र*** : *इसे अलंकारशास्त्र, साहित्यशास्त्र और काव्यमीमांसा भी कहते हैं। इसमें काव्यनाटकादि, गुण, दोष, रीति, अंलकार, रस, ध्वनि आदि तत्त्वों*

पर विचार होता है। इसमें पचासों मौलिक ग्रन्थ लिखे गए हैं, टीकाओं की तो बात ही अलग है।

इस शास्त्र का प्राचीनतम ग्रन्थ भरतमुनि का नाट्यशास्त्र है। इसके बाद भामह (600 ई.) वामन (800 ई.) मम्मट (12 वीं शताब्दी) आदि काव्यशास्त्री प्रसिद्ध हैं। जगन्नाथ (17 वीं शताब्दी) का रसगंगाधर एक प्रकार से अन्तिम साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थ है।

अभ्यास-प्रश्न

1. शास्त्रीय साहित्य का विकास वस्तुतः किस युग से आरंभ होता है?
2. वैदिक मंत्रों के शुद्ध उच्चारण तथा अर्थों को समझने के लिए किन शास्त्रों की आवश्यकता होती है?
3. वैदिक यज्ञों में वास्तुकला की आवश्यकता क्यों पड़ी?
4. आयुर्वेद का आधार कौन-सा ग्रन्थ है?
5. दर्शनशास्त्र किन-किन रूपों में विकसित हुआ?
6. काव्यशास्त्र के आविर्भाव का कारण बताइए।
7. राजनीति का विवेचन पहले किस रूप में होता था?
8. अर्थशास्त्र किस शास्त्र से विकसित हुआ है?
9. निघण्टु किसे कहते हैं? इसमें किसका संकलन किया गया है?
10. अमरकोष की रचना किस शताब्दी में हुई थी?
11. लेखक और ग्रन्थों को सही-सही मिलाइए–

क	ख
हलायुध	वैजयन्ती
यादवप्रकाश	विश्वप्रकाश
महेश्वर	अभिधानरत्नमाला
हेमचन्द्र	अभिधानचिन्तामणि

12. शब्दकल्पद्रुम के लेखक कौन थे?
13. व्याकरणशास्त्र संबंधी सर्वप्रथम ग्रन्थ कौन है और इसके रचयिता कौन है?
14. अष्टाध्यायी में कितने अध्याय और सूत्र हैं?
15. पाणिनि का समय क्या माना गया है?
16. कात्यायन कौन थे और व्याकरण में उनका क्या योगदान है?

17. महाभाष्य का विषय क्या है?
18. सिद्धान्तकौमुदी की रचना किसने की?
19. पाणिनीय व्याकरण में प्रवेश के लिए कौन-सा सरल ग्रन्थ लिखा गया है।
20. व्याकरण में 'त्रिमुनि' के नाम से कौन प्रसिद्ध हैं?
21. पाणिनीय व्याकरण पर लिखित कुछ दार्शनिक ग्रन्थों के नाम लिखिए।
22. पाँच वैयाकरणों के नाम लिखिए।
23. धर्मशास्त्र के अंतर्गत किन विषयों का विचार प्राप्त होता है ?
24. स्मृतिग्रन्थों में सर्वाधिक महत्त्व किसका है? उसकी रचना किसने की?
25. स्मृतियों का अध्ययन महत्त्वपूर्ण क्यों है?
26. सभी मानवों का पिता किसे कहा गया है?
27. मनुस्मृति में किसका विवेचन किया गया है?
28. तीन स्मृतिग्रन्थों के नाम लिखिए।
29. मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति के अध्यायों की संख्या बताइए।
30. वीरचिन्तामणि में किस विषय पर विचार किया गया है तथा उसका लेखक कौन है?
31. गजशास्त्र और अश्वशास्त्र के एक-एक ग्रन्थ का नाम दीजिए।
32. गणित के क्षेत्र में किन-किन ग्रन्थकारों का महान् योगदान रहा है?
33. फलित ज्योतिष पर वराहमिहिर के कौन-कौन ग्रन्थ हैं?
34. नास्तिक दर्शन के कितने रूप मिलते हैं? वे क्या-क्या हैं?
35. चार्वाक दर्शन का संस्थापक कौन है?
36. बौद्धधर्म किसके द्वारा आरम्भ हुआ?
37. किन-किन देशों में बौद्ध धर्म का विकास हुआ?
38. बौद्ध दर्शन की शाखाओं के नाम लिखिए।
39. आस्तिक दर्शन के छह रूपों के नाम लिखिए।
40. न्यायदर्शन का प्रवर्त्तक कौन है?
41. तात्पर्यटीका किसकी रचना है?
42. जयन्तभट्ट किस प्रसिद्ध ग्रन्थ का लेखक है?
43. अलंकार शास्त्र के अन्य नाम बताइए।
44. भरतमुनि .... शास्त्र के रचयिता हैं।
45. तत्त्वचिन्तामणि .... की रचना है।
46. मीमांसा का आरम्भ .... के मीमांसासूत्रों से होता है।

47. .... और .... ने मीमांसा में दो पृथक् संप्रदाय चलाए।

48. रिक्त स्थानों को भरिए–

(क) राजनीतिविषयक सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ कौटिल्य का .... है।

(ख) कौटिल्य का दूसरा नाम .... है।

(ग) अर्थशास्त्र में किन-किन विषयों का वर्णन है? पचास शब्दों में लिखिए।

(घ) नीतिशास्त्र के पाँच प्रमुख ग्रन्थों के नाम लिखिए

(ङ) .... को उपवेद माना गया हैं।

49. निम्नलिखित दर्शनों का प्रवर्त्तक कौन है?

(क) वेदान्तदर्शन ....

(ख) न्यायदर्शन ....

(ग) वैशेषिकदर्शन ....

(घ) सांख्यदर्शन ....

(ङ) योगदर्शन ....

(च) मीमांसादर्शन ....

50. कोष्ठक से लेखकों को चुनिए–

काव्यालङ्कार ....

काव्यादर्श ....

काव्यालंकारसूत्र ....

ध्वन्यालोक ....

वक्रोक्तिजीवित ....

काव्यमीमांसा ....

(कुन्तक, राजशेखर, भामह, दण्डी, आनन्दवर्धन, वामन)

51. लेखक और शास्त्रों को ठीक-ठीक मिलाइए–

लेखक	***शास्त्र***
वाग्भट	कामसूत्र
नागार्जुन	चरक संहिता
चरक	अष्टांगसंग्रह
वात्स्यायन	योगसार
भास्कराचार्य	पञ्चसिद्धान्तिका
वराहमिहिर	लीलावती

52. ठीक-ठीक जोड़िए—

वनस्पतिविज्ञान	रागविबोध
शिल्पशास्त्र	नवरत्नपरीक्षा
मूर्तिकला	नलपाक
रत्नविज्ञान	वास्तुमण्डल
पाकशास्त्र	मानसार
रसरत्नसमुच्चय	यन्त्रसर्वस्व
विमानविद्या	रसायनशास्त्र
संगीतशास्त्र	उपवनविनोद

53. ग्रन्थकार, ग्रन्थ और काल ठीक-ठीक मिलाइए—

ग्रन्थकार	*ग्रन्थ*	*काल*
मम्मट	रसगंगाधर	14वीं शताब्दी
विश्वनाथ	काव्यप्रकाश	12वीं शताब्दी
जगन्नाथ	साहित्यदर्पण	16वीं शताब्दी

54. ठीक-ठीक जोड़िए—

बादरायण	वेदान्तसार
वल्लभाचार्य	श्रीभाष्य
रामानुज	द्वैतसिद्धान्त
मध्वाचार्य	शुद्धाद्वैतसिद्धान्त
सदानन्द	ब्रह्मसूत्र

लेखकानुक्रमणिका

ग्रन्थानुक्रमणिका

ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों की कालक्रमसारणी

ऋग्वेद		2000 ई. पू. से 1300 ई. पू.
वैदिक साहित्य	संहिता	
	ब्राह्मण	2000 ई. पू. से 800 ई. पू.
	उपनिषद्	
वेदाङ्ग साहित्य		अनुमानतः 800 ई. पू. से आरंभ
	(शिक्षा, कल्प, व्याकरण)	
	(निरुक्त, छन्द, ज्यौतिष)	
लगधाचार्य	वेदाङ्ग ज्यौतिष	1400 ई. पू. से 800 ई. पू.
यास्क	निरुक्त	(800 ई. पू.)
पिंगलाचार्य	छन्दःसूत्र	800 ई. पू. से 700 ई. पू.
कपिल	सांख्यसूत्र	700 ई. पू.
जैमिनि	मीमांसासूत्र	600 ई. पू.
कणाद	वैशेषिकसूत्र	500 ई. पू.
चरक	चरकसंहिता	500 ई. पू. से 200 ई. पू.
सुश्रुत	सुश्रुतसंहिता	500 ई. पू.
पाणिनि	अष्टाध्यायी	500 ई. पू.
वाल्मीकि	रामायण	500 ई. पू.
व्यास	महाभारत	400 ई. पू.
आश्वलायन	आश्वलायनगृह्यसूत्र	400 ई. पू.
कौटिल्य	(चाणक्य) अर्थशास्त्र	400 ई. पू.
बादरायण	ब्रह्मसूत्र	300 ई. पू.
व्यास	पुराण	300 ई. पू.

कात्यायन (वररुचि)	वार्तिक (अष्टाध्यायी पर)	300 ई. पू.
मनु	मनुस्मृति	200 ई. पू. से 200 ई. के बीच
भरतमुनि	नाट्यशास्त्र	100 ई. पू. से 300 ई. पू.
पतञ्जलि	महाभाष्य, योगसूत्र	185 ई. पू.
भास	प्रतिमा, अभिषेक, बालचरित पञ्चरात्र, मध्यमव्यायोग कर्णभार, उरुभंग, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच। स्वप्नवासवदत्त प्रतिज्ञायौगन्धरायण अविमारक और चारुदत्त।	100 ई. पू. से 200 ई. के बीच
कालिदास	रघुवंश, कुमारसम्भव, ऋतुसंहार, मेघदूत, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, अभिज्ञानशाकुन्तल।	100 ई. पू.
अश्वघोष	बुद्धचरित, सौन्दरनन्द शारिपुत्रप्रकरण	प्रथम शताब्दी ई.
गुणाढ्य	बृहत्कथा	प्रथम शताब्दी ई.
उमास्वामी (उमास्वाति)	तत्त्वार्थाधिगमसूत्र	100 ई. के आस-पास
हाल (शालिवाहन)	गाहासतसई (गाथासप्तशती)	प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई.
प्रशस्तपाद	पदार्थधर्मसंग्रह	द्वितीय शताब्दी ई.
वात्स्यायन	न्यायसूत्रभाष्य	द्वितीय शताब्दी ई.
शर्ववर्मा	कातन्त्र	द्वितीय शताब्दी ई.
शबरस्वामी	शाबरभाष्य	द्वितीय शताब्दी ई.
	नारदस्मृति	दूसरी शताब्दी से पांचवी शताब्दी ई.
विष्णुशर्मा	पञ्चतन्त्र	दूसरी शताब्दी से छठी शताब्दी के बीच

अमरसिंह	अमरकोश	तीसरी शताब्दी ई. (पूर्वार्ध)
वात्स्यायन	कामसूत्र	तीसरी शताब्दी ई.
	याज्ञवल्क्यस्मृति	तीसरी शताब्दी ई.
आर्यशूर	जातकमाला	तीसरी-चौथी शताब्दी ई.
शूद्रक	मृच्छकटिक	तीसरी-चौथी शताब्दी ई.
ईश्वरकृष्ण	सांख्यकारिका	चौथी-पाँचवीं शताब्दी ई.
चन्द्रगोमी	चान्द्रव्याकरण	चौथी-पाँचवी शताब्दी ई.
आर्यभट	आर्यभटीय	पाँचवीं शताब्दी ई. (उत्तरार्ध)
विशाखदत्त	मुद्राराक्षस	पाँचवीं छठी शताब्दी ई.
कुमारदास	जानकीहरण	छठी शताब्दी ई.
दण्डी	दशकुमारचरित, काव्यादर्श, अवन्तिसुन्दरीकथा	छठी शताब्दी ई.
उद्योतकर	न्यायवार्तिक	छठी शताब्दी ई.
भारवि	किरातार्जुनीय	छठी शताब्दी ई.
भर्तृहरि	वाक्यपदीय	छठी शताब्दी ई.
वराहमिहिर	पञ्चसिद्धान्तिका बृहत्संहिता, बृहज्जातक लघुजातक	550 ई. के आसपास
भट्टि	रावणवध या भट्टिकाव्य	500 ई. से 650 ई. के बीच
भामह	काव्यालङ्कार	छठी शताब्दी ई.
माघ	शिशुपालवध	सातवीं शताब्दी ई.
शङ्कराचार्य	भजगोविन्दम् सौन्दर्यलहरी, शाङ्करभाष्य	सातवीं शताब्दी
बाणभट्ट	कादम्बरी, हर्षचरित, चण्डीशतक	सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध
मयूरभट्ट	सूर्यशतक	सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध
सुबन्धु	वासवदत्ता	सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध
भर्तृहरि	शृङ्गारशतक नीतिशतक, वैराग्यशतक	सातवीं शताब्दी ई.
ब्रह्मगुप्त	ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त	सातवीं शताब्दी ई.

महेन्द्रविक्रम	मत्तविलासप्रहसन	सातवीं शताब्दी ई.
कामन्दकि	कामन्दकीयनीतिसार	सातवीं शताब्दी ई.
प्रभाकर मिश्र	बृहती टीका (शाबरभाष्य पर)	सातवीं शताब्दी ई.
हर्ष	प्रियदर्शिका, रत्नावली नागानन्द	सातवीं शताब्दी ई. का पूर्वार्ध
भवभूति	महावीरचरित, मालती-माधव, उत्तररामचरित	सातवीं शताब्दी ई. के आसपास
अमरुकवि	अमरुशतक	सातवीं शताब्दी
वाक्पतिराज	गौडवहो	750 ई. के आसपास
भट्टनारायण	वेणीसंहार	सातवीं आठवीं शताब्दी ई.
दामोदरभट्ट	कुट्टनीमत	आठवीं शताब्दी ई.
हरिभद्र	षड्दर्शनसमुच्चय	आठवीं शताब्दी ई.
मुरारि	अनर्घराघव	आठवीं शताब्दी का उत्तरार्ध
वामन	काशिकावृत्ति, काव्यालङ्कारसूत्र	आठवीं-दसवीं शताब्दी ई.
पुष्पदन्त	शिवमहिम्नःस्तोत्र	आठवीं-दसवीं शताब्दी ई.
बुद्धस्वामी	बृहत्कथाश्लोकसंग्रह	आठवी-नवीं शताब्दी ई.
आनन्दवर्धन	ध्वन्यालोक	850 ई.
वाचस्पतिमिश्र	तात्पर्यटीका तत्त्वकौमुदीटीका (सांख्य)	नवीं शताब्दी ई.
शाकटायन(पाल्यकीर्ति)	शाकटायन व्याकरण	नवीं शताब्दी ई.
दामोदरमिश्र	हनुमन्नाटक	नवीं शताब्दी ई.
रत्नाकर	हरविजय	नवीं शताब्दी ई.
शिवस्वामी	कप्फिणाभ्युदय	नवीं शताब्दी ई.
राजशेखर	काव्यमीमांसा, बालरामायण, बालभारत, कर्पूरमञ्जरी	नवीं शताब्दी का उत्तरार्ध
	विद्धशालभञ्जिका	नवीं शताब्दी
सिद्धार्थ	उपमितिभवप्रपञ्चकथा	नवीं शताब्दी ई.
श्यामिलक	पादताडितक	800द्900 ई. के बीच
जयन्तभट्ट	न्यायमञ्जरी	दसवीं शताब्दी ई.

हरिचन्द्र	जीवन्धरचम्पू	दसवीं शताब्दी ई.
त्रिविक्रमभट्ट	नलचम्पू,	
	मदालसाचम्पू	दसवीं शताब्दी ई. का पूर्वार्ध
हलायुध	अभिधानरत्नमाला	दसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध
कुन्तक	वक्रोक्तिजीवित	ग्यारहवीं शताब्दी ई.
महिमभट्ट	व्यक्तिविवेक	ग्यारहवीं शताब्दी ई.
क्षेमेन्द्र	सुवृत्ततिलक, दशावतारचरित, कलाविलास, दर्पदलन, चतुर्वर्गसंग्रह, समयमातृका, बृहत्कथामञ्जरी	ग्यारहवीं शताब्दी ई.
यादवप्रकाश	वैजयन्ती	ग्यारहवीं शताब्दी ई.
कृष्णमित्र	प्रबोधचन्द्रोदय	ग्यारहवीं शताब्दी ई.
सोमदेव	कथासरित्सागर	ग्यारहवीं शताब्दी ई.
सोड्ढल	उदयसुन्दरीकथा	ग्यारहवीं शताब्दी ई.
रामानुज	श्रीभाष्य	ग्यारहवीं शताब्दी ई.
हेमचन्द्र	कुमारपालचरित अभिधानचिन्तामणि	1088 ई. से 1172 ई.
बिल्हण	विक्रमाङ्कदेवचरित, चौरपञ्चाशिका	ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध
भोज	रामायणचम्पू, युक्तिकल्पतरु	ग्यारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध
पद्मगुप्त	नवसाहसाङ्कचरित	1005 ई.
केशवमिश्र	तर्कभाषा	बारहवीं शताब्दी ई.
अनुभूतिस्वरूप	सारस्वतप्रक्रिया	बारहवीं शताब्दी ई.
वत्सराज	किरातार्जुनीय, रूक्मिणीहरण, त्रिपुरदाह, समुद्रमंथन कर्पूरचरित, हास्यचूडामणि	बारहवीं शताब्दी ई.
भास्कराचार्य	सिद्धान्तशिरोमणि, लीलावती बीजगणित, ग्रहगणित गोल	बारहवीं शताब्दी ई.

मम्मट	काव्यप्रकाश	बारहवीं शताब्दी ई.
जल्हण	सोमपालचरित	बारहवीं शताब्दी ई.
महेश्वर	विश्वप्रकाश	बारहवीं शताब्दी ई.
अज्ञात	पृथ्वीराजविजय	1192 ई.
कल्हण	राजतरङ्गिणी	1148 ई. से 1151 ई. तक
मङ्ख	श्रीकण्ठचरित	बारहवीं शताब्दी ई.
श्रीहर्ष	नैषधीयचरित	बारहवीं शताब्दी ई.
गोवर्धनाचार्य	आर्यासप्तशती	बारहवीं शताब्दी ई.
जयदेव	गीतगोविन्द	बारहवीं शताब्दी ई.
विज्ञानभिक्षु	सांख्यप्रवचनभाष्य	तेरहवीं शताब्दी ई.
गङ्गेश उपाध्याय	तत्त्वचिन्तामणि	तेरहवीं शताब्दी ई.
मध्वाचार्य	पूर्णप्रज्ञभाष्य	तेरहवीं शताब्दी ई.
यशोधर	जयमङ्गलव्याख्या (कामसूत्र पर)	तेरहवीं शताब्दी ई.
यशपाल	मोहमुद्‌गर	तेरहवीं शताब्दी ई.
शार्ङ्गधर	शार्ङ्गधरसंहिता	तेरहवीं शताब्दी ई.
सोमेश्वर	कीर्तिकौमुदी	तेरहवीं शताब्दी ई.
गङ्गादास	छन्दोमंजरी	तेरहवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी
राजशेखर	प्रबन्धकोश	1350 ई.
विद्यापति	पुरुषपरीक्षा	चौदहवीं शताब्दी ई.
नारायण पंडित	हितोपदेश	चौदहवीं शताब्दी ई.
माधवाचार्य	सर्वदर्शनसंग्रह	चौदहवीं शताब्दी ई.
विश्वनाथ	साहित्यदर्पण	चौदहवीं शताब्दी ई.
नयचन्द्रसूरि	हम्मीरमहाकाव्य	चौदहवीं शताब्दी ई.
वेदान्तदेशिक	संकल्पसूर्योदय	चौदहवीं शताब्दी ई.
सुपद्म	सौपद्मव्याकरण	चौदहवीं शताब्दी ई.
रामचन्द्र	प्रक्रियाकौमुदी	चौदहवीं शताब्दी ई.
जोनराज	राजतरङ्गिणी	1450 ई.
श्रीवर	जैनराजतरङ्गिणी	पन्द्रहवीं शताब्दी ई.
केदारभट्ट	वृत्तरत्नाकर	पन्द्रहवीं शताब्दी ई.
वल्लभाचार्य	अणुभाष्य	1479 ई.-1544 ई.

बल्लालसेन	भोजप्रबन्ध	सोलहवीं शताब्दी ई.
कविकर्णपूर	आनन्दवृन्दावनचम्पू	सोलहवीं शताब्दी ई.
शेषश्रीकृष्ण	पारिजातहरणचम्पू	सोलहवीं शताब्दी ई.
जीवगोस्वामी	गोपालचम्पू	सोलहवीं शताब्दी ई.
तिरुमलाम्बा	वरदाम्बिका-परिणयचम्पू	सोलहवीं शताब्दी ई.
शुक	राजतरङ्गिणी	1596 ई.
कर्णपूर	चैतन्यचन्द्रोदय	सोलहवीं शताब्दी ई.
भावमिश्र	भावप्रकाश	सोलहवीं शताब्दी ई.
भट्टोजिदीक्षित	सिद्धान्तकौमुदी	सोलहवीं शताब्दी ई.
अन्नंभट्ट	तर्कसंग्रह	सत्रहवीं शताब्दी ई.
विश्वनाथ	न्यायपञ्चानन, भाषा-परिच्छेद, न्यायसूत्रवृत्ति	सत्रहवीं शताब्दी ई.
कौण्डभट्ट	वैयाकरणभूषणसार	सत्रहवीं शताब्दी ई.
नागेशभट्ट	वैयाकरण-सिद्धान्तलघुमंजूषा	सत्रहवीं शताब्दी ई.
सदानन्द	वेदान्तसार	सत्रहवीं शताब्दी ई.
नीलकण्ठदीक्षित	नीलकण्ठविजयचम्पू	सत्रहवीं शताब्दी ई.
जगन्नाथ (पण्डितराज)	रसगंगाधर भामिनिविलास, गङ्गालहरी, सुधालहरी	सत्रहवीं शताब्दी
वेङ्कटाध्वरि	विश्वगुणादर्शचम्पू	सत्रहवीं शताब्दी ई.
अम्बिकादत्तव्यास	शिवराजविजय	1858-1900 ई.
तारानाथतर्कवाचस्पति	वाचस्पत्य	1873-1884 ई.
राधाकान्तदेव	शब्दकल्पद्रुम	उन्नीसवीं शताब्दी ई.
क्षमाराव (पण्डिता)	कथामुक्तावली, विचित्रपरिषद् यात्रा	1890दृ1954 ई.

बीसवीं शताब्दी के लेखक

माधव श्रीहरिअणे	तिलकयशोऽर्णव	1880 ई.

क्षमाराव (पण्डिता)	*कथामुक्तावली,* विचित्रपरिषद्यात्रा सत्याग्रहगीता	*1890-1954*
प्रभुदत्त शास्त्री	गणपतिसम्भव, धन्वन्तरिजन्मामृत रामकीर्ति कौस्तुभ	
ब्रह्मानन्द शुक्ल	नेहरूचरित	1904 ई.
विश्वनाथ केशव छत्रे	सुभाषचरित	1906 ई.
रामकुबेर मालवीय	मालवीयचरित	1906 ई.
श्रीधरभास्कर वर्णेकर	शिवराज्योदय	1919 ई.
उमाशंकर त्रिपाठी	छत्रपतिचरित	1922 ई.
पद्मशास्त्री	लेनिनामृत	1925 ई.
डॉ. सत्यव्रत शास्त्री	श्रीबोधिसत्त्वमहाकाव्य	1930 ई.
श्री सुबोधचन्द्रपन्त	झांसीश्वरीचरित	1932 ई.
डॉ. जगन्नाथ पण्डित	किरातार्जुनीय	1934 ई.
रेवाप्रसाद द्विवेदी	सीताचरित	1935 ई.
काशीनाथ	रुक्मिणीहरण	वि.स. 1954
साधुशरणमिश्र	गान्धिचरित	
श्रीत्र्यम्बक शर्मा भण्डारकर	स्वामिविवेकानन्दचरित	
विजेन्द्रनाथ शास्त्री	स्वराज्यविजय	
श्रीहरिहरप्रसाद द्विवेदी	गोस्वामी तुलसीदासचरित	
शिवगोविन्द त्रिपाठी	गान्धिगौरव	
राजेन्द्र मिश्र	वामनावतरण, प्रमद्वरा, विद्योत्तमा	2000 वि. सं.

महाकाव्य

अमीरचन्द्र शास्त्री	नेहरूचरित
उमापति द्विवेदी	पारिजातहरण
प्रभुनाथशास्त्री	गणपतिसम्भव
कृष्णप्रसाद शर्मा	श्रीकृष्णचरितामृत

विन्ध्येश्वरी प्रसाद	कर्णार्जुनीय
वसन्त त्र्यम्बकशेवडे	शुम्भवध
काशीनाथ द्विवेदी	रुक्मिणीहरण
रेवाप्रसाद द्विवेदी	सीताचरित, स्वातन्त्र्यसम्भव
राजेन्द्र मिश्र	वामनावतरण, जानकीजीवन
श्रीधर भास्कर वर्णेकर	शिवराज्योदय
उमा शंकर त्रिपाठी	छत्रपतिचरित
माधवश्रीहरिअणे	तिलकयशोऽर्णव
सत्यव्रतशास्त्री	बोधिसत्त्वचरित, इन्दिरागान्धिचरित, रामकीर्तिमहाकाव्य

विश्वनाथकेशव अत्रे	सुभाषचरित
ब्रह्मानन्द शुक्ल	नेहरूचरित
साधुशरण मिश्र	गान्धिचरित
वसन्त त्र्यम्बक शर्मा	स्वामिविवेकानन्दचरित
रामकुबेर मालवीय	मालवीयचरित
हरिहरप्रसाद द्विवेदी	गोस्वामितुलसीदासचरित
द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री	स्वराज्यविजय
शिवगोविन्द त्रिपाठी	गान्धिगौरव

खण्ड काव्य

प्रभुदत्त शास्त्री	धन्वन्तरिजन्मामृत, रामकीर्तिकौस्तुभ
क्षमाराव	सत्याग्रहगीता
सत्यव्रत शास्त्री	गुरूगोविन्दसिंहचरित, थाईदेशविलासः, शर्मण्यदेशः सुतरांविभाति, बृहत्तरभारतम्

श्रीधर भास्कर वर्णेकर	भारतरत्नशतक
रामकृष्णपरमहंस	सन्ध्या
बटुकनाथ शास्त्री	कल्लोलिनी
शिवजी उपाध्याय	शक्तिशतकम्, कुम्भशतकम्
राधावल्लभ त्रिपाठी	वातायन, सन्धान, लहरीदशक
मनुदेवभट्टाचार्य	शृंगारशृंगारक, पण्डितराजवैभव

देवकीमेनन	शारदादेवीचरित
श्रीदेवी कुट्टी	नैषध, भामापरिणय
ताम्पुराट्टि	मधुरापुरीविजय

गीतिकाव्य

जानकीवल्लभ शास्त्री	काकली, बन्दीमन्दिर
नारायणरथ	कपोतदूत
राजगोपाल आय्यंगर	काकदूत
दयानिधि मिश्र	सूर्यदूत
रामावतार शर्मा	मुद्गरदूत

गद्यकाव्य

अम्बिकादत्तव्यास	शिवराजविजय
क्षमाराव	कथामुक्तावली
श्रीपादहसूरकर	दावानल, सिन्धुकथा
मेधाव्रत	कुमुदिनीचन्द्र
श्रीकृष्णगोस्वामी	उद्वेजिनी, आम्रपाली
केशवचन्ददास	शीतलतृष्णा, प्रतिवाद
रामनपिल्लई	नलिनी
रामजी उपाध्याय	द्वासुपर्णा, प्राथेय
रामकरण शर्मा	सीमा
रामशरण त्रिपाठी	कौमुदी, कल्लोलिनी

रूपक

लक्ष्मणसूरि	दिल्लीसाम्राज्य
पद्मनाभ	त्रिपुरविजय
माधव	सुभद्राहरण
मथुराप्रसाद दीक्षित	वीरप्रसाद, शंकरविजय, गान्धिविजय, भारतविजय
हरिदास सिद्धान्तवागीश	मेवाड़प्रताप, वंगीयप्रताप, शिवाजीचरित

रामजी उपाध्याय	सीताभ्युदय
रेवाप्रसाद द्विवेदी	अशोकविजय
वासुदेव द्विवेदी	भोजराजसाम्राज्य
राजेन्द्र मिश्र	प्रमद्वरा, विद्योत्तमा
राधावल्लभ त्रिपाठी	प्रेमपीयूष
तण्डुलप्रस्थ	प्रेक्षणसप्तक
सिद्धेश्वरभट्टाचार्य	धरित्रीपतिनिर्वाचन
वीरेन्द्रकुमारभट्टाचार्य	शार्दूलशकट, वेष्टनव्यायोग
	लक्षणव्यायोग, शरणार्थिसंवाद
शिवजी उपाध्याय	यौतक, स्वातन्त्र्यशौर्य,
प्रतिभापलायन,	कालकूट

एकांकी

बेंकटाचल	विकटकवि
के.के.आर. नायर	आलस्यकर्मीय
बटुकनाथ शर्मा	पाण्डित्यताण्डव
मधुसूदन	पण्डितचरित्प्रहसन
महालिङ्गशास्त्री	मर्कटमर्दलिका

अनुशंसित पुस्तकों की सूची

संस्कृत

1. अग्रवाल, हंसराज — **संस्कृतसाहित्येतिहासः** चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
2. मिश्र, रामचन्द्र — **संस्कृतसाहित्येतिहासः** चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
3. शास्त्री, द्विजेन्द्रनाथ — **संस्कृतवाङ्मयविमर्शः**

हिन्दी

1. अग्रवाल, हंसराज — **संस्कृत साहित्य का इतिहास** चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-1, 1965
2. उपाध्याय, बलदेव —
   1. **संस्कृत साहित्य का इतिहास** प्रथम भाग, दशम संस्करण शारदा-मंदिर, वाराणसी
   2. **संस्कृत शास्त्रों का इतिहास** शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1969
   3. **वैदिक साहित्य और संस्कृति** शारदा संस्थान, वाराणसी 1973
3. कीथ, ए. बी. (अनुवादक-डा. मंगलदेव शास्त्री) —
   1. **संस्कृत साहित्य का इतिहास** मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1967
4. गैरोला, वाचस्पति — **संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास** चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-1, 1978
5. पाण्डेय, चन्द्रशेखर — **संस्कृत साहित्य की रूपरेखा** साहित्य निकेतन, कानपुर, 1964

7. व्यास, भोलाशकर — **सस्कृत-कविदर्शन** चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी 1968

8. विन्टरनिट्ज हिन्दी अनुवाद — **1. भारतीय साहित्य का इतिहास** प्रथम भाग (वैदिक साहित्य) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

(अनुवादक-डॉ. रामचन्द्र पांडेय) — **2. भारतीय साहित्य का इतिहास** द्वितीय भाग (रामायण, महाभारत, पुराण) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

(अनुवादक-डॉ. सुभद्र झा) — **3. भारतीय साहित्य का इतिहास** तृतीय खण्ड, प्रथम भाग, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली

9. सूर्यकान्त — **संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास** ओरिएण्ट लॉगमेन, नई दिल्ली, 1972

10. डॉ. उमाशंकर शर्मा ऋषि — **संस्कृत साहित्य का इतिहास** चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, 1999

11. डॉ. कपिलदेव द्विवेदी — **वैदिक साहित्य और संस्कृति** विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1998